वर्ष १ अंक १२
विक्रम संवत् २०७६ भाद्रपद
सितम्बर २०१९

आर्ष क्रान्ति

वैदिक समाज व्यवस्था के लिए समर्पित

14 सितम्बर 2019
हिंदी दिवस

यह श्राध्द-तर्पण तो नहीं

जीवित माता-पिता व बड़ों का सम्मान व सेवा ही श्राध्द व तर्पण है

7–8 सितम्बर को ऋषि उद्यान परोपकारिणी सभा में संपन्न साहित्यकार सम्मलेन के कार्यक्रमों की झलकियाँ

साहित्यकार सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए परोपकारिणी सभा की सम्माननीया सदस्य श्रीमती ज्योत्स्ना जी

साहित्यकार सम्मेलन में प्रतीक चिन्ह ग्रहण करते हुए आर्य परिवार संस्था के पदाधिकारी श्री कृष्ण गोपाल आर्य

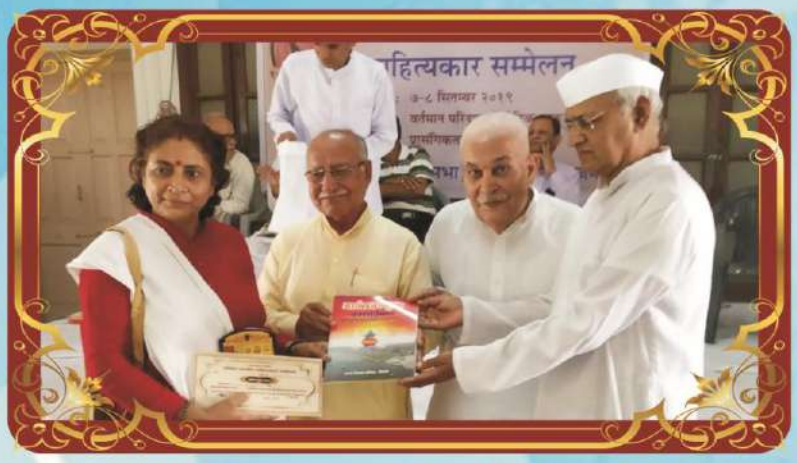

सम्मेलन में सम्मान ग्रहण करती हुई प्रसिद्ध साहित्यकार डॉ पुष्पा सिंह बिसेन नई दिल्ली

साहित्यकार सम्मेलन में भाग लेने आए आचार्य रूपचंद्र दीपक जी, डॉक्टर बद्री प्रसाद पंचोली जी, कन्हैयालाल आर्य जी, रतनलाल राजौरा जी, पंडित शिव नारायण उपाध्याय जी, आचार्य विमल कुमार जी, डॉक्टर प्रेम सिंह परिहार जी, पत्रकार राजेंद्र गुंजल जी, आचार्य वेद प्रिय शास्त्रीजी, राहुल आर्य

साहित्यकार सम्मेलन के अवसर पर आयोजित कवि सम्मेलन मैं मंच पर उपस्थित सर्व श्री प्रभु दयाल खरे,श्रीमान अशफाक अहमद,डॉक्टर किंकर पाल सिंह, श्री भगवत भट्ट, डॉक्टर रूपचंद्र दीपक और प्रेम नारायण साहू, रायसेन मध्यप्रदेश

साहित्यकार सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए परोपकारिणी सभा की सम्माननीया सदस्य श्रीमती ज्योत्स्ना जी

सोशल और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का समाज पर प्रभाव व आर्य समाज सत्र को संबोधित करते हुए डॉ प्रेम सिंह परिहार

साहित्यकार सम्मेलन के द्वितीय दिवस के तृतीय सत्र शहिंदी लेखन में व्याकरण में वर्तनीश के महत्व पर वक्ता के रूप में उद्बोधन देते हुए लेखक संपादक और आंदोलनकर्मी श्री संत समीर, नई दिल्ली

साहित्यकार सम्मेलन के प्रथम दिवस के अंतिम सत्र में कवि सम्मेलन में अपनी कविताओं का पाठ करते हुए ऋषि उद्यान अजमेर के ब्रह्मचारी

साहित्यकार सम्मेलन के द्वितीय दिवस के प्रथम सत्र में वक्ता के रूप में अपना उद्बोधन देते हुए वैदिक विद्वान्, चिंतक और लेखक आचार्य रूपचंद्र दीपक जी लखनऊ

साहित्यकार सम्मेलन के प्रथम दिवस के द्वितीय सत्र देवनागरी लिपि आर्य भाषा हिंदी के संरक्षण एवं प्रचार–प्रसार में आर्य समाज का योगदानष विषय पर वक्ता के रूप में उद्बोधन देते हुए आर्य लेखक परिषद के उप मंत्री और साहित्यकार डॉ हरी सिंह पाल

साहित्यकार सम्मेलन में मुख्य अतिथि के रूप में उद्बोधन देते हुए परोपकारिणी सभा के सम्माननीय मंत्री श्रीमान कन्हैया लाल आर्य जी

समाज सुधार में आर्य समाज और साहित्यकारों के योगदान की चर्चा करते हुए प्रसिद्ध वैदिक विद्वान आचार्य विमल कुमार जी

वैदिक वांग्मय की उपयोगिता एवं प्रासंगिकता सत्र के अध्यक्षीय उद्बोधन देते हुए आर्य लेखक परिषद के प्रधान आचार्य वेद प्रिय शास्त्री जी

साहित्यकार सम्मेलन मैं आर्य लेखक परिषद के कार्य और उद्देश्य तथा साहित्यका सम्मेलन आयोजित करने के उद्देश्य को रेखांकित करते हुए अखिलेश आर्येन्दु

सहित्यकार सम्मेलन में आयोजित कवि सम्मेलन में कविता पाठ करते हुए श्रीमती रंजना परिहार मुरैना मध्य प्रदेश

साहित्यकार सम्मेलन में अपना उद्बोधन देते हुए आर्य लेखक परिषद् के उपाध्यक्ष आचार्य रामस्वरूप रक्षक जी

सहित्यकार सम्मेलन के द्वितीय सत्र में अपना उद्बोधन देते हुए डा. वेदप्रकाश विद्यार्थी जी

साहित्यकार सम्मेलन में सम्मान ग्रहण करते हुए प्रसिद्ध साहित्यकार डॉक्टर बद्री प्रसाद पंचोली

आर्ष क्रांति के सह संपादक प्रांशु आर्य सम्मेलन में प्रतीक चिन्ह और प्रमाण पत्र ग्रहण करते हुए

साहित्यकार सम्मेलन में सम्मान ग्रहण करते हुए हेमंत कुमार आर्य

साहित्यकार सम्मेलन में वक्ता के रूप में आमंत्रित आचार्य ओम प्रकाश जी नई दिल्ली सम्मान ग्रहण करते हुए

साहित्यकार सम्मेलन में कवि श्री मुरारी शिल्पी (रायसेन,म.प्र) सम्मान ग्रहण करते हुए

साहित्यकार सम्मेलन मैं भाग लेने वाले श्री विज्ञान मुनि जी परली वैद्यनाथ सम्मान ग्रहण करते हुए

साहित्यकार सम्मेलन अजमेर का उद्घाटन करते हुए प्रसिद्ध साहित्यकार डॉ राकेश चक्र, परोपकारिणी सभा अजमेर के सम्माननीय मंत्री श्री कन्हैयालाल आर्य जी, वैदिक विद्वान् आचार्य विमल कुमार जी, डॉ वेदप्रकाश विद्यार्थी जी आर्य लेखक परिषद के अध्यक्ष आचार्य वेद प्रिय शास्त्री जी और मंत्री साहित्यकार अखिलेश आर्येन्दु

आर्य लेखक परिषद एवं परोपकारिणी सभा अजमेर के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित साहित्यकार सम्मेलन मैं पधारे साहित्यकार गण

ओ३म्

आर्य लेखक परिषद् का मुख पत्र

आर्ष क्रान्ति

सितम्बर २०१९

वर्ष–१ अंक–१२,
विक्रम संवत् २०७५
दयानान्दाब्द– १६५
कलि संवत् – ५११६
सृष्टि संवत् –१,६६,०८,५३,११६

प्रधान सम्पादक
वेदप्रिय शास्त्री
(७६६५७६५११३)

❖

समन्वय सम्पादक
अखिलेश आर्येन्दु
(८१७८७१०३३४)

❖

सह सम्पादक
प्रांशु आर्य (कोटा)
(९६६३६७०६४०)

❖

आकल्पन
प्रवीण कुमार (महाराष्ट्र)

❖

सम्पादकीय कार्यालय
ए–११,त्यागी विहार, नांगलोई,
दिल्ली–११००४१
चलभाष– ८१७८७१०३३४

अनुक्रम

विषय

१ चिन्तनीय(सम्पादकीय)

२ सभ्यताओं में शासन व्यवस्था .....

३ बीत गई सो बीत गई

४ Shudra Means Labour Class

५ क्या आर्य बाहर से आए थे ?

६ वेद नित्य हैं और विद्यास्वरूप भी.....

७ मृतक श्राद्ध–खण्डन

८ मैं शिक्षक हूं

९ मानव हूँ

१० हिंदी और भारतीय भाषाओं का अंतर्सम्बंध

११ हिंदी महीमा

१२ परिषद्–समाचार

ईमेल – aryalekhakparishad@gmail.com
वेबसाइट – https://aryalekhakparishad.com/
फेसबुक आर्य लेखक परिषद्

Digital

चिन्तनीय

जब आम आदमी की नीयत खराब हो जाए, वह बेईमान अर्थात् अविश्वसनीय हो जाए यही नहीं उसकी मानवता ही मर जाए तब किसी समाज या राष्ट्र की क्या दशा होगी? क्या किसी को समाज या राष्ट्र की और मानवता की दुर्दशा की चिन्ता है? आज यह एक ज्वलंत प्रश्न है जो संसार के समस्त समझदारों से उत्तर चाहता है। देश में जितनी भी सरकारी और गैर सरकारी संस्थाएँ हैं उनके उद्देश्य बहुत भले हैं। उन सबमें जनहित, परोपकार, सुरक्षा, न्याय, सुशिक्षा और संस्कार की ही चर्चा की गई है परन्तु क्या ये सभी सच में ऐसा कर भी रहीं हैं या नहीं? आइए विचार करें।

१ – हमारी पहली आवश्यकता है दूध। इसके बिना हमारे बालकों का पोषण ही सम्भव नहीं है। लोगों की चाय भी इसी पर निर्भर करती है। क्या इस देश के बच्चों को शुद्ध दूध मिलता है? क्या आप शुद्ध दूध की चाय पीते हैं ? क्या आपको पता है कि दूध के नाम पर हमारे बच्चे जहर पी रहे हैं। आपको सब कुछ विदित है। कर कुछ नहीं सकते। दूध के पश्चात् दूध के उत्पाद यथा – घृत, दही, लस्सी, पनीर, मावा आदि शुद्ध मिल रहे हैं क्या? जो बनावटी माल मिल रहा है क्या आप जानते हैं कि उनमें क्या–क्या मिलाया जाता है। क्या वे सचमुच खाने योग्य होते हैं? अब जो लोग ये नकली दूध, दही, घी, पनीर, मावा बनाकर बेच रहे हैं, क्या ये सचमुच मनुष्य हैं ? क्या इनमें थोड़ी भी मानवता है ? क्या ये लोग धार्मिक हैं ? भगवान का भय इनको है क्या ? नहीं। इन लोगों ने अपना अलग भगवान बना रखा है जो इनके इस पुण्य कार्य में सहयोगी है।

२ – बालकों को दिया जानेवाला पोषाहार, उसकी गुणवत्ता, शुद्धता और व्यवस्था भी बड़ी प्रेरणादायक है। यहाँ भी इंसानियत की धज्जियाँ उड़ाते नर पिशाच आप नंगी आँखों से देख सकते हैं। यह सभी शिक्षित अध्यापन करने वाले और पूजा–पाठ करने वाले धार्मिक कहलाने वाले मिलेंगे। इनके भी सबके अपने–अपने भगवान हैं जो इस भावी पीढ़ी को बिगाड़ने के शुभ कार्य में इनकी मदद करते हैं। देश में करोड़ों बच्चे कुपोषण से दम तोड़ते, बीमार और दुर्बल, भोजन और चिकित्सा के अभाव में जीने को विवश तड़प रहे हैं परन्तु हृदयहीन और निर्लज्ज सरकारें और नेता इधर से आँखें चुरा रहे हैं। क्या इन्हें मनुष्य कहना चाहिए? इन नृशंसो के भी व्यक्तिगत भगवान, देवता और पूजा–पाठ हैं । गर्भ के अन्दर ही बेटियों की हत्या, पैदा हुई पालीपोषी बेटियों के साथ सामूहिक बलात्कार और हत्या, विवाह के लिए दहेज जुटाने की भारी चिन्ता और जीवन भर की कमाई दहेज में सौंप देने के पश्चात् भी मां–बाप को शांति न मिल पाना, ससुराल में बेटियों को जलाकर मार देना, जीविकोपार्जन के क्षेत्र में भी बहन बेटियों की इज्जत अस्मत का सुरक्षित न रहना। इस प्रकार बेटी पैदा करना जहाँ अभिशाप बना दिया गया है, वहाँ कौन मां–बाप बेटी पैदा करना चाहेगा? ऐसे में बेटी बचाओ – बेटी पढ़ाओ का नारा देना कितना हास्यास्पद है। वर्तमान में इसे भी एक व्यवसाय बना लिया गया है। उक्त समस्याएं पैदा करने वाले भी बड़े –बड़े संत, गुरु, समाज सुधारक, जनप्रतिनिधि राजनेता और प्रशासनिक अधिकारी हों, गीता, रामायण पढ़ने वाले, पूजा–पाठ परायण लोग हों तो क्या यह चिन्ता का विषय नहीं है ? आज कल बालकों का अपहरण करने और उनको विकलांग बना कर भीख मंगवाने तथा उनकी हत्या करके उपयोगी शरीरांगो को निकालकर बेचने की चर्चा जोरों पर है। इस कार्य में भी बड़े–बड़े डॉक्टर, नर्स और उच्च शिक्षा प्राप्त लोग ही लग रहे हैं। इनके भी अपने भगवान और पूजा–पाठ हैं। बालकों की शिक्षा के क्षेत्र में भी बहुत दयनीय स्थिति है। पचास–साठ हजार तक का मासिक वेतन पाने वाले शिक्षक अधिकांश में अयोग्य और गैर जिम्मेदार कर्तव्य विमुख हैं। विद्यालयों में देर से जाना, तंबाकू रगड़ना, बीड़ी सिगरेट और शराब पीना, दिन भर सोते रहना इनका जन्म सिद्ध अधिकार हो गया है। योग्यता का हाल ऐसा है कि इन शिक्षक शिक्षिकाओं को शुद्ध भाषा तक लिखना और पढ़ना

नहीं आता। इनके भी अपने–अपने भगवान और देवता हैं। इस प्रकार समाज और राष्ट्र की भावी पीढ़ी को योग्य, सुसंस्कारित, स्वस्थ और सुशिक्षित बनाने का कार्य सुचारू रूप से कैसे चलेगा क्या यह चिन्ता का विषय नहीं है ?

३ – अब शाक भाजी और फलों पर ध्यान दीजिए। मण्डी में चिकनी चमकदार, बड़ी–बड़ी सब्जियाँ और फल देखकर मन ललचाता है। परन्तु इनकी वास्तविकता न जानने के कारण हम लोग पैसा देकर जहर खाने पर विवश हैं। गन्दी जगह और गन्दी खाद से उगाई गई शाक भाजी, रसायनिक इंजेक्शनों से बड़ी की गई सब्जियाँ, रसायनों से पकाए गए और कृत्रिम रंगों में रंगे और चमकाए पर फल आपके परिवार को कभी भी स्वस्थ नहीं रख सकते। विचारिए कि ये शाक भाजी और फलों के उत्पादक और विक्रेता भी मनुष्य है? यह भी भगवान के भक्त मिलेंगे। हमारे भोजन के लिए नित्य काम में आने वाले मिर्च, हल्दी, हींग आदि मसालों में, चाय, बिस्किट, डबल रोटी में, शर्बत आदि पेय पदार्थों में क्या–क्या अभक्ष्य मिलाया जाता है यह भी सबको विदित है। पकोड़े, पिज्जा, बर्गर, चाउमीन के नाम पर आप को क्या खिलाया जा रहा है ? जानवरों का मांस, चर्बी, मेंढक, मछली का आटा, हड्डियों का चूर्ण, कीड़ों का अर्क, जहरीले रसायन व रंग न जाने और क्या–क्या खिलाया जा रहा है। ऐसा करने वाले भी धार्मिक और ईश्वरभक्त मिलेंगे। **क्या इनमें इन्सानियत जिन्दा है?**

४ – स्वादिष्ट अभक्ष्य खाने के पश्चात् अस्वस्थ और रोगी होकर जब आप चिकित्सालयों में जाते हैं तो वहाँ आप को जीता–जागता नर्क देखने को मिलेगा। डॉक्टर, वैद्य, नर्स, कम्पाउण्डर नामधारी हृदयहीन, क्रूर, सहानुभूति शून्य, असंवेदनशील साक्षात् यमराज और यमदूत मिलेंगे। अनावश्यक नकली दवाइयों, जाँचें, एक्सरे और मोटी फीस के साथ अत्यधिक चिकित्सा शुल्क और रिश्वत अतिरिक्त के साथ आपका स्वागत होगा। मानवता का सर्वाधिक प्रताड़न यहीं देखने को मिलेगा। यह भी अपने को धार्मिक और ईश्वरभक्त कहते हैं।

५ – अब अन्याय, अत्याचार से रक्षा देने वाले न्याय क्षेत्रों में चलें। एक पुलिस सिपाही, पटवारी अर्जीनवीस और चपरासी से लेकर कलक्टर और कमिश्नर तक, न्यायाधीश से लेकर मुख्य न्यायाधीश तक सभी भ्रष्टाचार में आकण्ठ डूबे और न्याय का गला घोंटते हुए ही मिलते हैं। गरीबों के लिए न्याय और सुरक्षा स्वप्न बनकर रह गए हैं। प्राथमिक रिपोर्ट दर्ज कराना ही बहुत मुश्किल हो गया है। सभी जांच एजेंसियों और न्यायालयों पर से विश्वास उठ गया है। ग्राम सरपंच से लेकर प्रधानमंत्री तक के पदों का अर्थ जब केवल एक खास प्रकार का चोर हो गया हो, तो क्या यह चिन्ता का विषय नहीं है।

६ – जब शिक्षित और ज्ञानी लोग ही अपराध करने लगें, धर्माचार्य और गुरु ही अधर्म और पाप करने लगें, जब लोग श्रमचोर और मुफ्त खोर होकर परस्वहरण को ही धर्म और सदाचार मानने लगें तब मनुष्यता कैसे जीवित रह पाएगी यह चिन्तनीय है।

सा मा सत्योक्तिः परिपातु विश्वतः।

– वेदप्रिय शास्त्री

विश्वास – जिसका मूल अर्थ और फल निश्चय करके सत्य ही हो, उसका नाम विश्वास है।

अविश्वास – जो विश्वास का उल्टा है । जिसका तत्व अर्थ न हो वह अविश्वास है।

– महर्षि दयानन्द सरस्वती

सभ्यताओं में शासन व्यवस्था, बौद्धिक प्रगति और सांस्कृतिक सर्वेक्षण

– अखिलेश आर्येन्दु

फरवरी महीने से 'आर्ष क्रान्ति' में प्रारम्भ की गई श्रृंखला आप सुधी पाठकों द्वारा जो प्रेम मिला उससे लगा, आप सब को यह श्रृंखला पसन्द आ रही है। 'भारत के मूल निवासी और तथाकथित आक्रमणकारी आर्य' नामक श्रृंखला में तथाकथित आक्रमणकारी आर्य और तथाकथित भारत के मूल निवासी पर विस्तार से लिखे लेखों पर जो आप की जो प्रतिक्रयाएं आईं हैं उससे यह पता चलता है कि आप पाठकों के लिए यह नई जानकारी वाला विषय है। श्रृंखला के इसी क्रम में विदेशी ईसाई पादरियों, अंग्रेजों और विद्वानों ने दुराग्रह, द्वेष और शरारत की भावना से भारतीय इतिहास, वेद–वेदांग, शास्त्र, साहित्य और राजनीति को विकृत बताने का प्रयास किया। जिसका परिणाम यह हुआ कि भारतीय समाज स्वयं को अत्यन्त पिछड़ा हुआ, अशिक्षित, नासमझ और हीन भावना वाला होता गया। इसी तरह पुरातत्त्व के आधार पर लिखे गए सभ्यताओं के इतिहास के सम्बन्ध में दुराग्रहपूर्ण और पक्षपातपूर्ण दृष्टिकोण बनाया गया। सामान्य व्यक्ति और समाज को इस संदर्भ में कुछ भी नहीं पता है।

स्वतंत्रता के उपरान्त भारत में शासन की बागडोर जिन हाथों में आई, उसके लम्बी अवधि में भारतीय सभ्यता, संस्कृति, कला, धर्म, शिक्षा, भाषा, लिपि, साहित्य, विज्ञान, स्वदेशी स्वास्थ्य प्रणाली और प्रतिभाओं को हर तरह से हतोत्साहित किया गया। इतिहास लेखन, पुरातत्त्व और गवेषणा के कार्य में भी स्वदेशी के स्थान पर विदेशीपन और असंवेदनशीलता को अधिक प्रोत्साहन दिया गया। इसका परिणाम यह हुआ भारतीय संस्कृति और भारतीय इतिहास–कलाादि की महत्ता कम होती चली गई। भारतीयों में यह बात बैठ गई कि भारतीय साहित्य, ज्ञान, कला, विज्ञान, संस्कृति, सभ्यता, धर्म, अध्यात्म, दर्शन और चिकित्सा जैसे सभी क्षेत्रों में भारतीयों की अपेक्षा विदेशी लोग अधिक विकसित और सुलझे हुए थे। आज भी जो इतिहास हमारी इतिहास की पुस्तकों में पढ़ाया जाता है, वह भ्रमित करने वाला और हीनभावना को बढ़ाने वाला है। इससे मुक्त होने की आवश्यकता है।

इसी प्रकार पुरातत्त्व के आधार पर इतिहास में पढ़ाई जाने वाली सभ्यताओं पर भी खुलेमन से सोचने की आवश्यकता है। पिछले तीन श्रृंखलाओं में पुरातत्त्व पर आधारित इतिहास पर विवेचना और समीक्षा की जा रही है। जिसमें सिन्धु, आर्य, मोहनजोदड़ों और हड़प्पा की सभ्यता सम्मिलित है के समाज, भाषा, धर्म, कला, जीवन–शैली, जाति आदि को लेकर समीक्षा की गई। प्रस्तुत अंक में सभ्यताओं के अन्य क्षेत्रों पर विवेचनात्मक–दृष्टि रखने का प्रयास किया जा रहा है। आशा है यह श्रृंखला लेख भी पूर्व की भाँति पसन्द आएगा।

–सं सम्पादक

सभ्यताएं और बौद्धिक प्रगति –

सिन्धुघाटी, हड़प्पा, मोहनजोदड़ों आदि सभ्यताओं की प्रगति पर पिछले लेखों में हमने धर्म, अध्यात्म, भाषा, सामाजिक जीवन, संस्कृति और कला पर समीक्षा की थी और यह निष्कर्ष निकाला था कि पुरातात्त्विक क्षेत्र में कार्य करने वाले विदेशी और कुछ भारतीय तत्त्वशास्त्रियों ने मनमाने तरीके से विदेशी पुरातत्त्ववेत्ताओं के अनुमानों और कल्पनाओं के आधार पर अपना आकलन और अनुमान आधारित किया। जिसका परिणाम यह हुआ कि वैज्ञानिक तथ्य और अनुमान के आधार पर निकाले गए निष्कर्ष सच से दूर रहे। इस लेख में बौद्धिक और शासन की स्थिति पर मुख्य रूप से विचार किया जा रहा है।

पुरातत्त्ववेत्ताओं ने सिन्धुघाटी, हड़प्पा और मोहनजोदड़ों सभ्यताओं में हुए बौद्धिक प्रगति को सामान्य प्रगति माना है। इनके अनुसार पत्थर के बटखरों का निर्माण हो गया था जो एक नियम के आधार पर निर्मित थे। नाप–तौल की पद्धति के प्रमाण और खुदाई नापने का डंडा मिला है। सिन्धु घाटी में

नाप–तौल की पद्धति में भी 16 यूनिट थी जो आज भी है। लिखने–पढ़ने का कार्य तख्तियों पर किया जाता था। अध्यापन–शैली में खिलौने का प्रयोग किया जाता था। अंकगणित,रेखागणित और दशमलव के सिद्धान्त प्रचलित हो चुके थे। ये सारे प्रमाण सभ्यताओं में मिले खिलौनो, बटखरों और नाप–तौल के लिए उपयोग की जाने वाले अन्य पैमानों से मिलते हैं। इसी प्रकार ऋतुज्ञान, ग्रह–नक्षत्रों की जानकारी, रोगों की चिकित्सा की आयुर्वेदिक पद्धति, पुनर्जन्मवाद और ललित कला व चित्रकला के प्रमाण मिलने की बात भी कही जाती है। ये सारे प्रमाण यह सिद्ध करते हैं कि जिन सभ्यताओं को पुरातत्त्व शास्त्री उन्नत वाली सभ्यता कहते हैं वे कहीं न कहीं भारतीय सभ्यता–जहाँ इसी प्रकार की प्रगति की बात कही जाती रही है से पूर्णतः समान रखती है। लेकिन बात इतनी–सी नहीं है। बौद्धिक प्रगति के जो चिन्ह और प्रमाण बताए जाते हैं वे वेद में वर्णित ज्ञान–विज्ञान, साहित्य, कला, धर्म, अध्यात्म, भाषा, लिपि और दर्शन के स्तर का नहीं है। वैदिक गणित, ज्योतिष, शिक्षा और चिकित्सा का स्तर पर वैसा नहीं है जैसा कि वेद में वर्णित है। इसके दो कारण हो सकते हैं। पहला ये सभ्यताएँ और उनमें मिली वस्तुओं के सम्बन्ध में जो कल्पना और अनुमान लगाया गया है, उसे जैसा समझा गया है वैसा वे नहीं हैं और दूसरी बात यह क्षेत्र शहरी था, नागरी था या ग्रामीण था, इस पर एक मत से कोई निष्कर्ष निकालना जल्दबाजी होगी।

सभ्यताओं में मिले अवशेषों से उन सभ्यताओं का इतिहास लिखना इतिहास के साथ न्याय नहीं कहा जा सकता है। दूसरी बात जितने अवशेष मिले हैं वे अवशेष क्या पूरी सभ्यता के बारे में सब कुछ बता पाने में सक्षम है? यह बहुत बड़ा प्रश्न है। बहुत सारी चीजें समय के साथ मिट जाती हैं जिससे केवल कल्पना का सहारा लेना पड़ता है। ऐसे में सभ्यता का इतिहास लिखना लगभग असम्भव होता है। जैसे भारत का इतिहास हम जो पढ़ते हैं वह भारत के महान गौरव, गरिमा, ज्ञान–विज्ञान की उन्नति, भारत की महान् संस्कृति, सभ्यता, कला, साहित्य, राजनीति, चिकित्सा, शिक्षा, धर्म, अध्यात्म और दर्शन की वास्तविकता से मेल नहीं खाता है। क्योंकि लिखने वाले अधिकांशतः भारतीय नहीं थे और लिखने वालों की दृष्टि निष्पक्ष नहीं रही। स्पष्ट है भारत का इतिहास ईसाई पादरियों द्वारा लिखा गया जिसे वामपंथी इतिहासकारों ने बिना किसी विवेचना के स्वीकार कर लिया।

सभ्यताओं की बौद्धिक उन्नति के सम्बन्ध में जानने की अभी बहुत अधिक जरूरत है। वस्तुओं और चिन्हों पर खुदी भाषाओं को अभी पूर्णतः पढ़ा और समझा नहीं जा सका है। आज के आधार पर अनुमान और कल्पना करना करके सभ्यताओं के इतिहास को लिखना बहुत कठिन है। देखना यह भी है कि पुरातात्त्विक गवेषणा को प्रमाण के दायरे में लाने का आधार क्या है? इस पर आइए चिन्तन करते हैं।

सभ्यताओं का इतिहास लेखन करने का सबसे बड़ा आधार वेद है। वेद में कहानी, इतिहास, घटना और कथानक ढूढने और मानने वाले विदेशी और भारतीय विद्वान् दोनों हैं। पुरातत्त्व शास्त्री वेद के शब्दों, मंत्रों और अक्षरों के आधार पर सभ्यताओं में मिली वस्तुओं, चिन्हों आदि का मिलान करते हैं फिर उसका अनुमान और कल्पना के आधार पर कसते हैं। यह आगे चलकर इतिहास बन जाता है। एक उदाहरण से बात अपनी स्पष्ट करता हूँ–

सप्तसिन्धव देश जो सात नदियों–सिन्धु, शतद्रु (सतलज), विपाशा (व्यास), परुष्णी (रावी) असिक्नी(चिनाव), वितस्ता(जेहलम) और सरस्वती नदियों द्वारा सिंचित प्रदेश को सप्तसैन्धव बताया जाता है। इनमें विशालक पहाड़ियों के नीचे दक्षिण की ओर का थोड़ा पंजाब प्रान्तीय मैदानी भाग, हिमाचल प्रदेश तथा विभाजन से पहले के कश्मीर का बहुत बड़ा भाग आ जाता है। विदेशी और अनेक भारतीय इतिहासकार और विद्वान् मानते हैं कि उपरोक्त सात नदियों का वर्णन वेद में वर्णित है। ये विद्वान् यह मानते हैं कि आर्यों के आदि स्थान का वर्णन सप्तसिन्धु प्रदेश है। इनका वर्णन ऋग्वेद और अन्य वेदों में 'सप्तसिन्धव' पदों का प्रयोग किया गया है। इन विद्वानों का कहना है कि ऐसा प्रदेश अवश्य रहा होगा जहाँ आर्यलोग अपने आदिकाल में निवास करते थे और उन्हें अपने प्रदेश के प्रति बड़ा आकर्षण रहा है। वेदों में उन नदियों का बड़ा सुन्दर वर्णन और आकर्षक वर्णन उपलब्ध होता है जो उस प्रदेश में आर्यों के निवास का द्योतक है। अपने मत की पुष्टि में इतिहासकार अविनाश बाबू ऋग्वेद के इस मंत्र का प्रमाण देते हैं–

सुदेवो असि वरुण यस्य ते सप्तसिन्धवः। अनुक्षरन्ति काकुदं सूर्म्य सषिरामिव।(ऋ.8/69/12) अर्थात् हे (वरुण) वरण करने योग्य(यस्य) जिस तेरे (काकुदं) तालु के प्रति(सप्तसिन्धव) सातों छन्द बहते हुए नदधारों के समान(सुषिरां सूर्म्य) छिद्रवती लोहे की नली में जलधारों के समान(अनुक्षरन्ति) कहते हैं, वह तू(सुदेवःअसि) उत्तम ज्ञानदाता–ज्ञान का प्रकाशक है। जिस मंत्र को इतिहासकार सप्तसिन्धव प्रदेश से जोड़ते हैं, उस मंत्र का अर्थ किसी भी तरह से जुड़ता ही नहीं है। इसलिए वेद मंत्रों से सिन्धु, मोहनजोदड़ों, हड़प्पा सभ्यता से जोड़ने वाले इतिहासकार और विद्वान् यह भूल जाते हैं कि सप्तसिन्धव, हड़प्पा और मोहनजोदड़ों सभ्यता का वेद से कोई लेना–देना नहीं है। इसी तरह से वेद के अन्य मंत्रों में भी सप्त सिन्धव अर्थात् सात नदियों के वर्णन के बारे में इतिहासकार अपना मत देते हैं, लेकिन वे यह भूल जाते हैं कि सप्त सिन्धव का प्रयोग सात भारत में बहने वाली नदियों से कहीं पर जुड़ता नहीं है। निरुक्तकार ने वेद में सप्तसिन्धव पद को सात नदियों से नहीं जोड़ा है। कहने का भाव यह है कि वेदों में किसी भी सभ्यता का इतिहास का वर्णन नहीं पाया जाता है। इस दृष्टि से पुरातत्त्व शास्त्रियों का वेद में इतिहास के पाए जाने का मत यथार्थ से बहुत दूर है। और सभ्यताओं का वेद से सम्बन्ध जोड़ने का विचार भी सत्य के विपरीत है।

शासन व्यवस्था –

सभ्यताओं में शासन व्यवस्था के सम्बन्ध में इतिहासकारों का मत अलग–अलग रहा है। विदेशी और भारत के इतिहासकार और पुरातत्त्व शास्त्री मानते हैं कि मोहनजोदड़ों, सिन्धु, हड़प्पा सभ्यताओं में शासन व्यवस्था जनतंत्रात्मक रही है। इतिहासकार मानते हैं कि मोहनजोदड़ों में जनतंत्रात्मक व्यवस्था थी जो लोक स्वास्थ्य और सफाई पर जोर देने वाली थी। वहीं पर हड़प्पा सभ्यता में शासन व्यवस्था मध्यवर्गीय जनतंत्रात्मक थी। ये सभी मत को पुष्ट करने के लिए कोई उपयुक्त साधन नहीं प्राप्त होते हैं। कुछ विद्वान् कहते हैं कि केन्द्रीय सत्ता में विकेन्द्रीयकरण की व्यवस्था पाई जाती थी। जिसके अनुसार केंद्र की ओर से विभिन्न प्रदेशों में विभिन्न पदाधिकारी शासन करते थे, जिन्हें जनता का पूरा सहयोग मिलता था। इसके अतिरिक्त नगरपालिका की व्यवस्था की बात भी कहीं जाती है। इसके उदाहरण में वेद का कोई मंत्र नहीं उद्धृत नहीं किया जाता है। नालियाँ, सड़कों की सुरक्षा, देखभाल, लैंप–पोस्टों का प्रबंध देखकर पुरातत्त्व शास्त्री नगरपालिका की व्यवस्था की बात करते हैं।

अब हम सभ्यताओं की शासन व्यवस्था के सन्दर्भ में इतिहासकारों के मतों की समीक्षा कर लेते हैं। इतिहासकार हंटर ने शासन व्यवस्था को जनतांत्रिक कहा है। यह किस आधार पर कह रहे हैं, समझ में नहीं आता है। किस अवशेष के आधार पर शासन की व्यवस्था को जनतांत्रिक कह सकते हैं, बताना कठिन है। शासन का सूत्र किसके हाथ में था किस आधार पर एक मत से कहा जा सकता है। रात में पुलिस की गश्त का क्या प्रमाण है, इस पर कोई प्रमाण विद्वान् नहीं देते हैं। केवल अंदाजा लगाया जा सकता है। इसी तरह सिन्धुघाटी सभ्यता के सम्बन्ध में विद्वानों के मत का कोई ठोस आधार नहीं प्राप्त होता है। शासन व्यवस्था अच्छी थी तो कितनी अच्छी थी, उसकी अच्छाइयों का मापदण्ड क्या था, इसका भी कोई ठोस आधार नहीं मिलता है। किसी स्तर पर अशांति का कोई प्रमाण नहीं मिलता है। यह किस आधार पर इतिहासकार दावा करते हैं, कहना कठिन है। कहा जाता है कि सभ्यताओं में सार्वजनिक भवनों का अभाव नहीं था। यह भी कहा जाता है कि नागरिकता का सिद्धान्त पाया जाता है। लोग बाहरी अस्त्र–शस्त्र राज्य की रक्षा के लिए रखते थे। यह कैसे पता लगा कि राज्य की रक्षा के लिए लोग अस्त्र–सस्त्र रखते थे कि अपनी रक्षा के लिए?

अवशेषों के आधार पर किसी सभ्यता की शासन व्यवस्था के सम्बन्ध में कोई दावा करना क्या इतिहास की दृष्टि से उचित कहा जाएगा? जनतांत्रिक व्यवस्था थी या राजा के द्वारा व्यवस्था थी, इस पर कोई ठोस मत नहीं है, इस लिए सभी इतिहासकारों के मतों में भिन्नता है। व्यवस्था शांति परक थी या अशांतिपरक, इसका पता कैसे चलेगा? ऐसे अनेक प्रश्न हैं जिनका उत्तर तर्कसंगत और तथ्यपरक ढंग से देना बहुत कठिन है। इसलिए सभ्यताओं के सम्बन्ध में कोई ठोस मत हम नहीं रख सकते हैं। सोचना यह है कि सभ्यताओं के इतिहास के सन्दर्भ में प्रमाण के रूप में कोई भी अवशेष अंतिम रूप से सत्य नहीं कहा जा सकता है। और इतिहास में यदि भ्राति या संशय इतिहास की

सत्यता पर प्रश्नचिन्ह लगाता है। पाठकगठ! यह लेख आप की जानकारी के लिए कितना लाभकारी है, यह तो आप के पत्रों के माध्यम से ही पता चल सकता है।

****

वेद वाणी

वेदाहमेतम् पुरुषं महान्तं —यजुर्वेद

काव्यभाव

जान रहा उस महान पुरुष को,
जिसका तेजोमय है प्रकाश।
आओ लक्ष्य बनाऐं उसको,
जो हम सबके एकदम पास।
अंधकार से दूर प्रभु वह,
ज्ञानवान आनंद स्वरूप।
मृत्यु दुःख से छूटना चाहें,
भजें नित्य प्रतिक्षण वह भूप।
छोड़ प्रेयपथ चलें श्रेयपथ,
यही मार्ग है मिलने का।
जिसने ऐसा जान लिया,
वह सूत्र समझ गया खिलने का।
आओ हम सब **'विमल'** भाव से,
शुद्ध उपासना में उतरे।
शुद्ध ज्ञान कर शुद्ध कर्म से,
मृत्यु के पंजे कतरें।।
या
जीवन का कल्याण करें।।

– विमलेश बंसल आर्या

बीत गई सो बीत गई

बीत गई सो बीत गई, जो बाकी बची सम्हाल उसे।
कीचड़ में जो पड़ा है हीरा, बाहर जल्द निकाल उसे।

कर अपने जीवन का आदर, धोले अपनी मैली चादर,
दुर्गुण और दुर्व्यसन तजकर, सद्गुण सुभग सजा तू सादर।
जहरीली नागिन है ईर्ष्या, अन्तस में मत पाल उसे।।
बीत गई .....

मदिरा पीकर फिर मत सोना, बहुत खो चुका अब मत खोना,
इस काया के कर्म क्षेत्र में, बीज पाप के अब मत बोना,
साध चपल मन चला न अब तू, टेढ़ी मेढ़ी चाल उसे।। बीत गई.....

सत्सरिता में कर अवगाहन, तब होगा तेरा मन पावन,
जीवन की सूखी बगिया में, आएगा सावन मनभावन ,
जो कुछ है कर्त्तव्य आज का, कल पर तू मत टाल उसे।। बीत गई.....

बाहर भीतर तू पवित्र हो, शुद्ध बुद्ध हो सच्चरित्र हो,
सुमति और सद्ज्ञान मिलेगा, तब तेरी महिमा विचित्र हो,
नेक कमाई जिसको कहते,तू जल्दी कर डाल उसे।।
बीत गई.....

विषयों का विष और न पी तू, मात्र स्वार्थ के लिए न जी तू,
अब थोड़ा परदुख कातर हो, फटे दिलों के दामन सी तू,
'' वेदप्रिय'' जो पास में तेरे, परहित में दे डाल उसे।।
बीत गई.....

– वेदप्रिय शास्त्री

SHUDRA MEANS LABOUR CLASS

– Dr. Roop Chandra 'Deepak'
Lucknow (U.P.)
Mob. 9839181690

The fourth pillar of original Vedic society is called 'Shudra'. Nowadays this word is normally not used. This is so because a number of small and low feelings have been attached to it, although wrongly. You can find people not minding if called non-believer, adulterer or thief, but feeling ill if called 'shudra'.

The word 'शूद्र' has been derived from the sanskrit root 'ईशुचिर् पूतिभावे' meaning 'he who is clean or he who cleans.' Rishi Dayanand writes in his commentary on Yajurveda (30.5) 'शूद्रं प्रीत्या सेवकं शुद्धिकरम्' that shudra is he who happily serves or who cleans. This is clear that the definition of 'Shudra' has nothing to do with his birth, as he is one who 'does' particular jobs. Shudra is a varna, not a caste. A varna is chosen on the bases of गुण–कर्म–स्वभाव.

Let us suppose about a family. The head of the family is a teacher who has three sons. The sons are respectively a Police Inspector, a shop-keeper and a peon. In other words we can say that a Brahmin has three sons who are Kshatriya, Vaishya and Shudra respectively. The Vedic varna - vyavastha works on distribution of occupations. The men of knowledge are called Brahmins, the men of warfare the Kahatriyas, the traders the Vaishyas and the labour class people are shudras.

Manusmriti, after defining the duties and responsibilities of the Brahmins, Kshatriyas and Vaishyas, makes the following definition to the shudras :

एकमेव हि शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत्।
एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया ।।
(मनुस्मृति : १.९१)

Translates Pt. Ganga Prasad Upadhyaya - "It is proper for the shudra to abandon such evils as recrimination, jealousy, vanity and to serve the brahmins, kshatriyas and vaishyas with due respect, and to earn his bread thereby. This is the only thing required of a shudra."

Rishi Dayanand clarifies that the upper classes will always bear in mind that if their children would remain ignorant, they would have to go down to the level of the Shudras. These children will also fear that if they would not keep up their level of conduct and will not acquire educatoin, they would be compelled to be classed as shudras.

Moreover, the lower classes will have an incentive to climb up to the higher classes. The task of service is given to the shudra only for the reason that he being un-educated cannot do any work requiring knowledge. But, bodily service he can easily do. It is the look out of the king etc. to organize the proper functionig of the varnas.

गुण–कर्म–स्वभाव (Acquired qualifications, Actual deeds and Natural tendencies) are the three bases on which the distribution of varna was formulated. Birth for certain was not the basis. Since the sanskrit word वर्ण has two meanings-Varna and colour, some scholars have suggested that the varna-system was colour-based. It was not the fact and there were people of all colours in all varnas.

Pt. Ganga Prasad Upadhyaya says, 'गुण' or the acquired qualifications are mostly the results of environment and education. They normally decide the status of an individual in the society and can be roughly compared with what is symbolized by public-examination-certificates. 'कर्म' or actual deeds are on the surface of affairs. 'स्वभाव' or natural tendencies, men bring with them while born, either as the resultants of past lives, or inherited from their parents. They are peculiar to each individual and are dominating factors in determining the individual character".

The shudras, say, the labour class has undergone humiliation and misery since after Mahabharata. They were refused education, equality and liberty, and were subjected to humiliation even in their day-to- day requirements. By and by they were called 'untouchable'. Earlier they were asked to prepare food, but now they were not supposed to touch the eatables of higher classes. They were as if ousted from normal living, and indiscriminately they were down troden.

It is ironical that they got humiliation after humiliation in the name of Vedas whereas Vedas give a sufficient amount of equality to them. 'यथेमां वाचम्' a mantra from Yajurveda speaks that all people, rich or poor, high or low, men or women, can study Vedas. In fact upto when the Vedas were consulted in daily and special matters, there was parity between the high and low classes, and it was in the times of Puranas that the down troden fell into miseries.

The British government of India, although widened the gulf between community and community, gave sufficient solace to the weaker section of the society. In the nineteenth century several reformers and specially Rishi Dayanand fought the society single handed for the upliftment of labour class. He says, "Is God so partial that he permits the reading of the Vedas only to the twice born and not to the Shudras? Had God designed to prohibit teaching in case of the Shudras, He should not have endowed them with tongue and ears. Just

as God has made the earth, water, fire, air, the moon, the sun, corn and other objects for all, similarly He has revealed the Vedas too for all."

The Shudras, or the labour class, is equally important to the society and this community must get equality from the heart of other people.

क्या आर्य बाहर से आए थे ?

– डॉ. वेदप्रताप वैदिक

पिछले डेढ़–दो सौ सालों से भारत में यह भ्रम फैलाया गया है कि आर्य लोग बाहर से आए, उन्होंने भारत पर आक्रमण किया और उन्हें भारत के मूल निवासियों को मारकर दक्षिण में खदेड़ दिया। अब इस भ्रम की जबर्दस्त काट हो गई है। हरयाणा के राखी गढ़ी नामक स्थान से निकले हजारों वर्ष पुराने दो कंकालों के वैज्ञानिक विश्लेषण ने सिद्ध कर दिया है कि आर्य लोग भारत के ही मूल निवासी थे तथा उनमें और द्रविड़ों में कोई आनुवांशिक अंतर नहीं है। पांच हजार साल पुराने इन कंकालों की वैज्ञानिक पड़ताल 28 वैज्ञानिकों के दल ने पिछले तीन साल में पूरी की है। उनका निष्कर्ष यह है कि अफगानिस्तान से अंडमान तक के निवासियों का मूल शारीरिक चरित्र (जीन्स) बिल्कुल एक–जैसा है। सबके पूर्वज एक–जैसे थे। बाहरी देशों या क्षेत्रों के लोगों के भारत–आगमन के कारण कुछ मिलावट जरुर हुई है लेकिन भारतीय लोगों का शारीरिक मूल एक–जैसा ही है। यह कहना भी गलत है कि विदेशियों ने यहां आकर भारतीयों को खेती करना सिखाया। भारतीय लोग हजारों साल से उन्नत खेती करते रहे हैं और उनके हजारों साल पुराने हवन–कुंड भी राखी गढ़ी में मिले हैं। इसी प्रकार संस्कृत दुनिया की सबसे प्राचीन भाषा है, जिसका प्रभाव फारसी, लेटिन और ग्रीक और जर्मन भाषाओं पर भी देखा जा सकता है। इस वैज्ञानिक खोज ने अंग्रेजों और हमारे वामपंथियों के दावों को रद्द कर दिया है। अंग्रेजों ने अपने सांस्कृतिक दादागीरी को सही दर्शाने और अपने अंग्रेजी राज का औचित्य ठहराने के लिए जो यह फर्जी कहानी गढ़ी थी, वह अब ध्वस्त हो गई है। मोनियर विलियम्स और मेक्समूलर की नकली अवधारणाओं को इस नई खोज ने शीर्षासन करवा दिया है। अब इस सत्य पर मुहर लग गई है कि संपूर्ण दक्षिण एशिया ही आर्यावर्त्त है, एक परिवार है, एक वंश है। अंग्रेजों और कार्ल मार्क्स के चेलों की खुराफात का परिणाम था कि बाल गंगाधर तिलक जैसे महान राष्ट्रवादी नेता ने आर्यों का उदगम स्थल उत्तर ध्रुव को बता दिया था। कई प्रसिद्ध वामपंथी इतिहासकार, जो प्राचीन भारतीय इतिहास के विख्यात विशेषज्ञ हैं, उन्हें मामूली संस्कृत भी आती होती तो वे इतनी बड़ी भूल नहीं करते। आर्य समाज के प्रणेता महर्षि दयानंद ने वेद, उपनिषद और स्मृति ग्रंथों के आधार पर डेढ़ सौ साल पहले ही सिद्ध कर दिया था कि आर्य लोग भारत के ही मूल निवासी हैं और वे ही यहां से सारी दुनिया में फैलते रहे हैं।

तद्विद्यामयत्वाद्वेदानामनित्यत्वं नैव घटते
(वेद उसकी विद्यास्वरूप होने से अनित्य नहीं हो सकते)

वेद नित्य हैं और विद्यास्वरूप भी : एक प्रश्नोत्तरात्मक विवेचना

– आचार्य वेदप्रकाश श्रोत्रिय
(नई दिल्ली)

वेद के सम्बन्ध में आम लोगों को ही नहीं विद्वान् कहे जाने वाले लोगों को भी अनेक तरह की भ्रान्तियाँ हैं। ये भ्रान्तियाँ वेद के नित्यत्व को लेकर तो हैं ही वेद विद्या के सम्बन्ध में भी हैं। यही कारण है कि वेद के नाम पर अनेक अवैदिक 'वाद' प्रचलित हो गए। सबसे आश्चर्य की बात यह है कि वेद के सम्बन्ध में प्रचलित वाद दर्शन शास्त्र में प्रतिष्ठित हुए। महर्षि दयानन्द ने सर्वप्रथम वेद के नाम पर प्रचलित वादों और भ्रान्तियों का निवारण सत्यार्थ प्रकाश और ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में अत्यन्त तर्कसंगत और वेद के आधार पर किया है। निश्चित ही इससे अनेक तरह की शंकाओं का निवारण हो जाता है। और ऐसे अनेक लोगों की शंकाओं का भी निवारण हो जाता है जो शब्द, पद और वाक्यों के योग होने से वेदों का अनित्यत्व मानते हैं। प्रस्तुत लेख वेद मान्यताओं के सम्बन्ध में प्रचलित ऐसे अनेक प्रश्नों का समाधान करता है जो वेद के सम्बन्ध में किए जाते रहे हैं। आचार्यवर वेदप्रकाश शास्त्रीजी द्वारा लिखित यह लेख उन सभी लोगों के लिए विशेष उपयोगी है जो वेद और महर्षि दयानन्द के सम्बन्ध में अतार्किक, अवैदिक और अवैज्ञानिक धारणा और विचार रखते हैं।

– सं सम्पादक

ईश्वर के वचन से जो सत्य प्रयोजन सिद्ध होता है सो अन्य के वचन से नहीं हो सकता। क्योंकि जैसा ईश्वर का वचन सर्वथा भ्रान्तरहित सत्य होता है वैसा अन्य का नहीं। और जो कोई वेदों के अनुकूल अर्थात् आत्मा की शुद्धि, आप्त पुरुषों के ग्रन्थों का बोध और उनकी शिक्षा से वेदों को यथावत् जान के कहता है, उनका वचन भी सत्य ही होता है। महर्षि के ये शब्द हमारे लिए सदा वेद विषयक चिन्तन के लिए चक्षु के समान सर्वसिद्धान्त दर्शक हैं। महर्षि के कहे प्रतिवर्ण अत्यन्त साधुवाद के योग्य हैं। हम स्थिर चित्त होकर उनके वचन को यथार्थ सत्य मानकर ही विभिन्न शास्त्रों से पुष्ट करने में अपनी धन्यता मानते हैं। अब हम इस विद्यामयत्व हेतु को प्रश्नोत्तर रूप में सुधी पाठकों के मोदार्थ प्रस्तुत कर रहे हैं।

प्रश्न – स्वामी दयानन्द ने विद्यामयत्व हेतु से वेदों की नित्यता सिद्ध करनी चाही है, वह निरर्थक है।

उत्तर –आप का यह कथन ही निरर्थक है। विद्यामयत्व उस ईश्वर की सामर्थ्य है और उसकी सामार्थ्य नित्य होती है। **'तद्विद्यामयत्वाद्वेदानामनित्यत्वं नैव घटते'** इस 'तत्' शब्द से अभिप्राय है कि इससे पूर्व कथन है कि शब्द द्विविध है–नित्य और कार्य भेद से। इसमें से जो शब्द, अर्थ और सम्बन्ध परमेश्वर के ज्ञानस्थ हैं वे सब नित्य ही होते हैं और जो हम लोगों की कल्पना से प्रसूत हैं, वे कार्य हैं। इसमें भी एक हेतु ऐसा है जो ऋषि ही लिख सकते हैं, अन्य कोई कितना ही बड़ा विद्वान् हो–लिखना तो बड़ी बात है–सोच भी नहीं सकता, वह हेतु है जिसका ज्ञान और क्रिया स्वभाव से सिद्ध और अनादि हैं, उसका सब सामर्थ्य भी नित्य होता है। इस कारण से अर्थात् शब्द सामर्थ्य भी नित्यत्व रूप हेतु से वेद सर्वविद्यामय है।

प्रश्न– प्रलय में स्थूल रूप से अविद्यामय वेदों के सूक्ष्मरूपेण विद्यमान होने से नित्यत्व कहेंगे, तब सत्कार्यवाद की रीति से सारे ही जगत् के सूक्ष्म रूप से विद्यमान रहने से नित्यता हो जाएगी फिर वेदों के नित्यत्व में किसी विशेषता की अनुत्पत्ति ही रहेगी।

उत्तर – तन्नयुक्तम्–यह कथन ठीक नहीं। उपादानरूपा प्रकृति के परिणामी होने से प्रकृति–जन्य कार्य जगत् के संयोग का वियोजन हो जाने पर जगत् की अनित्यता है, परन्तु वेदों के ईश्वरीय ज्ञान रूप गुण होने तथा निरवयव होने से नित्यता है, यह विशेषता है।

सत्कार्यवाद तो प्रकृति से जन्य कार्यजगत् में ही घटित होता है, प्रत्यय में अप्रसिद्ध होती है। इस कारण से ईश्वर के विद्यामयत्व जैसा कि सत्कार्यवाद इस शब्द से ही ध्वनित हो रहा है। जो कार्य से वेदों का नित्यत्व स्वीकार करना चाहिए। क्योंकि ईश्वर की रूप में आकर अपने उपादान रूपकारण में तद्रूप से रहे। किन्तु वेदविद्या नित्य है, उसका व्यभिचार अर्थात् वृद्धि, क्षय और उस प्रकार से कार्य नहीं है और न कोई इसका उपादान कारण है विपरीतता कभी नहीं होती। इसलिए वेद ईश्वर की अपनी विद्या अतः सत्कार्यवाद यहाँ पर संगत नहीं होता–उसका प्रसंग नहीं होने से सृष्ट है। **'वेदानां तेनैव स्वविद्यातः सृष्टत्त्वात्।'**

से।

प्रश्न– यदि वेद सर्वदा विद्यमान हैं तो उनकी उत्पत्ति का कथन ही व्यर्थ है। तथा स्वामी दयानन्द के **'स्वविद्यातः सृष्टत्वात्'** का भी विरोध है?

उत्तर– यहाँ पर वेदोत्पत्ति से अभिप्राय मीमांसा के दृष्टिकोण से समझना होगा। **'औत्पत्तिकस्तु शब्दस्यार्थेनसम्बन्धस्तस्य ज्ञानमुपदेशोऽव्यतिरिक्तश्चार्थेऽनुपलब्धेःतत्प्रमाणं वादरायणस्यानपेक्षत्वात् (मीं.1/1/5)** अर्थात् वेद वाक्य में स्थित प्रत्येक पद का अपने–अपने अर्थ के साथ स्वाभाविक अर्थात् नित्य सम्बन्ध है। इसी से वह धर्म के यथार्थ ज्ञान का साधन है क्योंकि ईश्वर की ओर से उसका उपदेश हुआ है और प्रत्यक्षादि प्रमाणों से जो अर्थ उपलब्ध नहीं होता उसमें उसका व्यतिरेक नहीं दीखता। वादरायण के मत में यह वाक्य अपने धर्म की सत्यता के लिए प्रत्यक्षादि प्रमाणों की अपेक्षा न रखने से धर्म में स्वतः प्रमाण है। **उत्पत्तिर्हि भाव उच्यते लक्षणया। अवियुक्तः शब्दार्थयोर्भाव सम्बन्ध, नोत्यन्नयोः पश्चात् सम्बन्धः।** उत्पत्ति का अर्थ भाग या सत्ता है। वेद के शब्द और अर्थ का सम्बन्ध अवियुक्त रहता है। उत्पन्न होने के बाद सम्बन्ध नहीं होता क्योंकि यह सम्बन्ध स्वाभाविक है। उत्पत्ति शब्द का अभीष्टार्थ ज्ञात होने पर वेदों के नित्यत्व और उत्पत्ति में कोई विरोधोक्ति नहीं है।

प्रश्न– फिर एक प्रश्न और उठता है, वह यह है कि परमाणु संयोग से बने कार्यस्थूल जगत् का–परमाणु वियोग होने पर अभाव हो जाता है वैसे वेद पुस्तकों का भी अभाव हो जाता है फिर वेदों की नित्यता क्यों मानी जावे?

उत्तर– वेद पुस्तक का नाम नहीं है, और न ही शब्द अक्षरों की बनावट का नाम है। वेद तो शब्द, अर्थ और सम्बन्ध स्वरूप ही है–जो ईश्वर के ज्ञान में सदा वर्तमान रहते हैं। पुस्तकादि के अनित्य होने से ईश्वर के ईश्वर का ज्ञान अनित्य नहीं हो सकता। ईश्वर के ज्ञान में वेद कैसे रहते हैं? उत्तर–बीजांकुर न्याय से नित्य बने रहते हैं। मात्र वेदों की सृष्टि में प्रसिद्ध और

प्रश्न– जिसका ज्ञान, क्रिया स्वभाव सिद्ध और अनादि हैं, इस पर हमारा प्रश्न है कि ईश्वर के ज्ञान क्रिया स्वाभाविक हैं–इससे सिद्ध है कि उसकी प्रत्येक क्रिया स्वाभाविक नहीं है, अन्यथा स्वाभाविकी यह विशेषण व्यर्थ हो जाएगा? कोई विशेष क्रिया ही स्वाभाविकी है–प्रत्येक क्रिया नहीं।'

उत्तर– यह नितान्त अज्ञान मूलक सोच है कि ईश्वर की सब क्रियाएं स्वाभाविकी – नित्य नहीं है। जिसका ज्ञान स्वाभाविक है उसका बल –प्रयत्न और क्रियाएं सब स्वाभाविक हैं। 'स्वाभाविकी' इस विशेषण के उपस्थान से क्या स्वाभाविक क्रिया के अभाव में परमात्मा की किसी अन्य क्रिया की भी सम्भावना की परिकल्पना की जा सकती है? सर्वथा उसके असम्भव होने से नहीं की जा सकती है। जहाँ परमेश क्रिया परिणामनी प्रकृति को चेष्टा देती है, वहाँ उस प्रकृति अर्थात् उपादान से उत्पन्न वस्तु की अनित्यता होती है, पर वह चेष्टा देने की क्रिया तो नित्य एवं स्वाभाविक है। अतः ऐसा सोचना अज्ञान मात्र ही है। क्योंकि आप ईश्वर के विद्यामयत्व से वेदों के नित्यत्व सिद्धि में बाधा उत्पन्न करना चाहते हैं, वह आपका प्रज्ञाबाध ही है। उसके अतिरिक्त अन्य कोई बोध हो नहीं सकता। बाध किसको कहते हैं? उत्तर–बाध उसको कहते हैं कि जिसका साध्याभाव प्रमाणान्तर से निश्चित है, वह बाधित कहलाता है। उदाहरण–जैसे बह्नि अनुष्ण है, द्रव्य होने से, यहाँ बह्नि के अनुष्णत्व में साध्य, उसका अभाव उष्णत्व स्पर्श द्वारा प्रत्यक्ष ही ग्रहीत है। परन्तु प्रकृति में तो वेदों का नियत्व किसी प्रमाणान्तर से बाधित नहीं है। **तद्विद्यामयत्वात् वेदानां नित्यत्वमेव।**

प्रश्न– परमेश्वर के सर्वविद्यामयत्व से वेदों का नित्यत्व मानते हैं तो न्याय की दृष्टि से इसके स्वरूपासिद्ध दोष उपस्थित होता है। इसका समाधान क्या है?

उत्तर– **अत्रभवतः न्याय शास्त्रानभिज्ञत्वमेव द्योत्यते – कथं – अन्नेदमवधेयं यत् स्वरूपसिद्धौ हेत्वभाववान् पक्षो भवति**–अर्थात् यहाँ आपकी न्याय शास्त्र अनभिज्ञता ही द्योतित होती है क्योंकि स्वरूपसिद्ध का लक्षण है कि पक्ष में हेतु का अभाव अर्थात् पक्ष में

साध्य के अभाव से ही दोष होता है। जिस प्रकार शब्द नित्य है चाक्षुषत्व होने से रूप के समान। यहाँ पर चाक्षुषत्व हेतु पक्ष में घटित नहीं है क्योंकि शब्द श्रवण का विषय है। ऐसे ही प्रकृत में वेद नित्य हैं, ईश्वर की विद्या होने से –यहाँ वेद पक्ष में नित्यत्व साध्य है और नित्यत्व पूर्णतया घटित है। अतः स्वरूपसिद्ध दोष विल्कुल भी नहीं है।

(प्रकृते च वेदोनित्यः ईश्वरस्य विद्यामयत्वात्। अत्र विद्यावत्वं हेतुः पक्षो वेदः, नित्यत्वं साध्यम्। तदा हेतोः पूर्णतया संघटनात् नास्ति स्वरूपाऽसिद्धि दूषणं प्रत्युत भवानेवाऽत्र निरनुयोज्यानुयोग नामके निग्रह स्थाने निगडितः)

प्रश्न – आक्षेप यह है कि वादी प्रतिवादी के द्वारा सम्मत हेतु से साध्य की सिद्धि हो सकती है, एक के द्वारा स्वीकृति से नहीं, ईश्वर की विद्यामयता एक के द्वारा सम्मत नहीं है, अतः उभयसम्मत नहीं होने के कारण मान्य नहीं है।

उत्तर – **य**ह हेतु ही स्वकल्पित है कि दोनों का उभय सम्मत हेतु ही साध्य का साधक होता है। आपकी ही युक्ति से जब तक आपका यह दिया गया हेतु मेरा सम्मत नहीं है, तब तक कैसे मान्य होगा? कहीं पर भी साध्य की साधना के लिए हेतु की यह परिभाषा नहीं दी गई। अतः यह अप्रमाणिक और अमान्य है।

यदि यह कहा जाए कि आपके ही हेतु लक्षण को स्वीकार करने में क्या हानि है? तो यह भी ठीक नहीं, वैसा–मानने पर उभयसम्मत हेतु के अभाव में सभी विषय अनिर्णीत रहेंगे। जैसे–ईश्वर सृष्टिकर्ता है, क्योंकि सृष्टि क्रियमाण है। यह हेतु नास्तिक को कदापि स्वीकृत नहीं है, तब तो ईश्वर की सदा असिद्धि ही बनी रहेगी, जब तक कि हेतु उभयसम्मत नहीं हो जावे। प्रकृत विषय में आपको ईश्वर की विद्यामयता स्वीकृत नहीं अतः वेदों का नित्यत्व कदापि सिद्ध न हो सकेगा। किन्तु ईश्वर की सर्वविद्यावत्ता 'शास्त्रयोनित्वात्'(वे.1/1/3) आदि प्रमाणों से आचार्य शंकर आदि के द्वारा स्वीकार की गई है।

प्रश्न – वेदानामीश्वरविद्यामयत्वं यहाँ विद्या शब्दरूपा है या ज्ञानरूपा ?

उत्तर – यहाँ पर 'विद्या' नित्य शब्दार्थ सम्बन्धमयी ज्ञानरूपा है।

प्रश्न – इसमें 'मयट्' प्रत्यय प्राचुर्य अर्थ में है या स्वार्थ में? अथवा विकार अर्थ में है?

उत्तर – **'तत्प्रकृतवचने मयट्'** इस सूत्र से प्राचार्यु आदि में **मयट्** प्रत्यय हो जाता है। **मयड्वैतयो.... । पां.4/3/143**

इस सूत्र से विकार या अवयव अर्थ में विशिष्यमाण शब्दार्थक विद्या शब्द से 'मयट्' के विधान की अनिवार्यता शब्दार्थक 'विद्या' शब्द से प्रतीत नहीं होती। यदि कथंचित् यह मान भी ली जाये तो इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि ईश्वरीय–शब्द–बाहुल्य–विशिष्ट वेद है।

यदि यह कहा जावे कि अन्नप्रचुर याग है, ऐसा कहने पर अन्नातिरिक्त घृतादि विशिष्ट की प्रतीत होती है, इसी भाँति वेद में भी ईश्वरीय शब्दातिरिक्त शब्द वैशिष्ट्य सिद्धि होता है, तो यह ठीक नहीं, क्योंकि **आनन्दमयोऽभ्यासात् (वे.1/1/12–13)** इन सूत्रों से जैसे मनुष्यत्व से आरम्भ कर उत्तरोत्तर, ब्रह्म को आनन्द प्राचुर्य शतगुणित है, इस शांकरभाष्य से ब्रह्मानन्द निरतिशय है, यही घोषित होता है। इस प्रकार 'अन्नप्रचुरयाग' इसके उक्त व्याख्यान को माना जाये तो शंकराचार्य के इस स्थल की संगति न हो सकेगी।

जिस कारण से ब्रह्म की आनन्द हेतुता बताई है। **एषएव हि आनन्दयाति**–जो आनन्दित करता है–वह प्रचुरानन्द है। जैसे लोक में जो अन्यों का धनिकत्व आपादित करता है, वह प्रचुरधन कहलाता है। उसी प्रकार यहाँ पर भी समझना चाहिए। जो ईश्वर उत्तरोत्तर शतगुणित विद्यावान् है, वही विद्यामय है। औरों को भी विद्यावत्त्व प्रदान करते हैं, वह परमेश्वर वेद वा विद्यामय होता है। इस प्रकार ऋषि का मूल वाक्य 'तद्विद्यामयत्वाद्वेदानामनित्यत्वं नैव घटते' असंदिग्ध शास्त्रीय और युक्ति युक्त है। विद्यामय शब्द के प्रयोग करने में ऋषि दयानन्द का महत्त्वपूर्ण और विशिष्ठ तात्पर्य है।

प्राचुर्य अर्थ में **मयट्** करने पर ईश्वर के प्रचुर शब्दों से अतिरिक्त शब्दों की भी अल्पता किसी प्रकार भी निवारित नहीं की जा सकती। ऐसा कथन भी ठीक नहीं कि प्राचुर्य कहने से तो अन्य वस्तु की सत्ता का तो बोध नहीं अपितु उसी प्रस्तुत वस्तु अल्पता का निवारण किया जाता है, और न अन्य किसी प्रमाण के द्वारा ही वेद में ईश्वर के अतिरिक्त शब्दों का प्रामाण्य उपपन्न है अथवा (विद्यामयत्व)–यहाँ स्वार्थ में मयट् करने पर भी अनित्यत्व आदि दोष नहीं आते हैं।

प्रश्न – **'मयट्'** प्रत्यय के प्राचुर्य अर्थ में परमेश्वर के स्वरूप ज्ञान से अन्तत्व की अनुपतत्ति होगी।''

उत्तर– यह तो किसी सिरफिरे का सा ही कथन है कि ईश्वर के अन्तत्व की उपपत्ति के लिए यहाँ पर मयट् का प्रयोजन माना

जा रहा है। यह बुद्धि तो धन्यवाद के योग्य है–क्योंकि वह ईश्वर के अन्तत्व की इष्टापत्ति के अनुसन्धान में प्रयत्नशील है। वेद पुस्तक रूप है, यह कथन तो मांसल बुद्धियों का ही अभिनन्दन–मात्र हो सकता है। इस प्रकार प्रतिकल्प में उत्पन्न होने पर वेदों में भेद होगा यह भी नहीं कहना चाहिए, क्योंकि परमेश्वर के अनुग्रह से सम्पूर्ण जगत् के भी पूर्वकल्प के सदृश्य ही नाम और रूप उत्पन्न होते हैं।

प्रश्न– ईश्वर के ज्ञान का वेदों से कैसा सम्बन्ध है?

उत्तर– गुणगुणी का सम्बन्ध होता है अतः यही सम्बन्ध है। ईश्वर का विषयता सम्बन्ध वेदों से नहीं है जैसा कि प्रायः लोग उद्भावित करते हैं। यदि विषयता सम्बन्ध माने तो नित्यता का उपोद्बलक नहीं होगा। कारण यह है कि ईश्वर तो सर्वत्र है, तब उसके ज्ञान से समस्त वस्तुओं का सम्बन्ध रहने से सभी को नित्य मानना होगा। अतः विषयता सम्बन्ध से नित्यत्व की सिद्धि नहीं हो सकती अर्थात् विषयता सम्बन्ध नित्यत्व का प्रयोजक नहीं है। अतः किसी का यह तर्क अतितराम् विचित्र और असंगत है कि यदि ईश्वर सब वस्तुओं को जानता है तो उन वस्तुओं की भी नित्यता होगी।

ईश्वर के ज्ञान द्वारा उपादान रूप प्रकृति से रचित वस्तुओं की नश्वरता कैसे विनष्ट हो जावेगी? वे वस्तुएं तो संयोग से उत्पन्न होती हैं, ईश्वर भी इसी रूप में इन वस्तुओं का ज्ञाता है कि पहले संयोग से बनती हैं, और पश्चात् द्वयणुकादि के वियोग से तो वेद हैं नहीं, वे ईश्वर की सर्वज्ञता के अन्तर्गत ही हैं।

यदि कोई नवीन वेदांत्ती होंगे तब तो अनेक दोष उत्पन्न हो जावेंगे। प्रथम तो इस पक्ष में ब्रह्म से अतिरिक्त वस्तु से अन्य वस्तु की सत्ता ही सिद्ध नहीं है। दूसरा विषयता सम्बन्ध भी उपपन्न नहीं होगा, क्योंकि वहाँ तो विषय और विषयी एक रस होंगे।

वेदों के विद्यामयत्व और ईश्वरीय ज्ञान में उसके वर्तमान होने पर तथा शब्दार्थ सम्बन्ध नित्यत्व के उपपादन करने पर शब्दाक्षरार्थ सम्बन्ध नित्य कहने पर भी न कोई विरोध है और न असंगति ही। देखिए–

सर्वशब्दो नमोवृत्तिः, श्रोत्रोत्पन्नस्तु गृह्यते।
वीचीतरंग न्यायेन, तदुत्पत्तिस्तु कीर्तिता।।
कदम्बगोत्रन्यायाद्, उत्पत्ति कस्यचिन्मते।

सब शब्द आकाशवृत्तिक है, उत्पन्न होने पर श्रोत्र से ग्रहण किए जाते हैं। उनकी उत्पत्ति वीची तरंग न्याय से कही गई है। किसी के मन में कदम्ब गोत्र न्याय से उत्पन्न होता है। उत्पन्न होता है या विनष्ट होता है। यह बुद्धि तो अतात्त्विकी है। यहाँ पर शब्दार्थ सम्बन्ध में ध्वन्यात्मक शब्द नहीं होता, इस स्पष्ट प्रतिपत्ति के लिए शब्द के अनन्तर अक्षर शब्द का पाठ ऋषि ने किया है। अक्षर शब्द के द्वारा भी अक्षरता अर्थात् नित्यता ही ध्वनित होनी है। जैसा कि महाभाष्य में **अक्षरं नक्षरं विद्याादित्यादि** कहकर व्याख्यान किया है।

अब हम अन्त में अपने कथन की पुष्टि में ऋषि वचन उद्धृत कर समापन की ओर जाते हैं– **तेषामीश्वरज्ञानेन सह सदैव विद्यमानत्त्वात्–** वेदों का ईश्वर के ज्ञान में सदा बने रहने से वेदनित्य हैं। अतः कारणादीश्वर विद्यामयत्वेन वेदानां नित्यत्वं वयं मन्यामहे– इस कारण से ईश्वर विद्यामयत्वेन–ईश्वर में विद्या प्राचुर्य से होने से वेद नित्य है क्योंकि वेद उसकी विद्यास्वरूप ही है।

यथास्मिन्कल्पे वेदेषुं शब्दाक्षर सम्बन्धाः सत्ति तथैवपूर्वमासन् अग्रे भविष्यन्ति च। कुतः ईश्वर विद्याया नित्यत्वादव्यभिचारित्वाच्च।

जैसे इस कल्प की सृष्टि में वेदों में शब्दाक्षर सम्बन्ध है वैसे पहले कल्प में थे और आगे भी होंगे क्योंकि ईश्वर की वृद्धि–क्षय और विपरीतता कभी नहीं होने से। ईश्वर अपनी विद्या से विद्यामय है जिसमें वेद सदा वर्तमान रहते हैं और उसी से वेद सृष्ट होते हैं। विद्या नित्य है तो वेद भी नित्य है। यही विद्यामयत्व का महत्त्व दार्शनिक वा वैज्ञानिक दृष्टि से प्रतिपादित हुआ। **इति।**

पश्यन्ति सर्वे चक्षुषा न सर्वे मनसा विदुः।
– अथर्व० ८.१०.१४

अर्थ – आँख से तो सब देखते हैं, मन से सब नहीं जानते।

With eyes everyone sees, but knows not in his mind.

मृतक श्राद्ध–खण्डन

– पंडित बुद्धदेव मीरपुरी

महर्षि दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश आदि सम्पूर्ण ग्रन्थों में यह लिखा है कि श्राद्ध जीवित माता–पिता, आचार्य, गुरु आदि महापुरुषों का होता है, मरे हुओं का नहीं। ऐसा ही वेदादिशास्त्रों में लिखा है। इसके विपरीत पौराणिक लोग यह मानते हैं कि श्राद्ध मृतकों का ही सिद्ध होता है, जीवितों का नहीं। मरे हुए माता–पिता आदि की ही पितृसंज्ञा होती है, जीवितों की नहीं।

आर्यसमाज के सिद्धान्त की सच्चाई को सिद्ध करने के लिए श्राद्ध के विषय को चार भागों में बाँटकर लिखा जाएगा। प्रथम यह कि पितर किस–किसको कहते हैं? दूसरे, उनका भोजन क्या होना चाहिए? तीसरे, भोजन के अधिकारी कौन हैं ? चौथे, मरे हुए पितरों को भोजन पहुँचता कैसे है ?

हमारा विचार है कि यदि अभ्युपगमसिद्धान्त से विशेष परीक्षा करने के लिए मृतक श्राद्ध मान भी लिया जाए तब भी वह पौराणिक ग्रन्थों के अनुसार नहीं हो सकता, बल्कि पौराणिक ग्रन्थों में लिखा है कि श्राद्ध असम्भव है। सबसे प्रथम पितर शब्द का विचार किया जाता है।

पितर शब्द

ये समानाः समनसो जीवा जीवेषु मामकाः।
तेषां श्रीर्मयि कल्पतामस्मॅल्लोके शतं समाः।।

– यजुः० १९। ४९

उव्वट भाष्य – **यजमानाः ये समानाः समनसः जीवाः जीवनवन्तः। जीवेषु जीवनवत्सु मध्ये मामकाः मदीयाः।।**

यजमान कहता है कि जो समान मनवाले, जीते हुओं में मेरे सम्बन्धी पितर हैं, उनकी लक्ष्मी मुझको प्राप्त हो।

इस मन्त्र में महीधर तथा उव्वट दोनों ने स्वीकार किया है कि जीवित प्राणियों को पितर कहते हैं तब पौराणिक पण्डितों की यह बात कि मुर्दो की ही पितृ–संज्ञा है, त्याज्य है।

उपहूताः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु।
त आगमन्तु ते इह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान्।।

– यजुः० १९। ५७

महीधरभाष्य – **हे पितरः, इह यज्ञे आगमन्तु आगच्छन्तु। व्यत्ययेन शपो लुक्। ते श्रुवन्तु अस्मद्वचः शृण्वन्तु। श्रुत्वा च अधिब्रुवन्तु पितृभिः पुत्राणां यद्वक्तव्यं तद्वदन्तु। ते अस्मानवन्तु।।**

हे पितर लोगो ! आप हमारे यज्ञों, घरों, खजानों में आओ, हमारी बातें सुनों और हमको उपदेश दो तथा हमारी रक्षा करो।

इस मन्त्र में महीधर तथा उव्वट ने इस बात को स्वीकार किया है कि पितर जीवित होते हैं, मृतक नहीं, क्योंकि पितरों का यज्ञ में आना और पुत्रों की बातें सुनना, उनको उपदेश देना व उनकी रक्षा करना–ये चार काम जीवितों में ही हो सकते हैं, मृतकों में नहीं।

शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम्।
पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः।।

– यजुः० २५। २२

महीधरभाष्य–यत्रास्माकं जरायां पुत्रासोऽस्मत्पुत्राः पितरो भवन्ति पुत्रवन्तो भवन्ति। यावदस्माकं पौत्रा भवन्तीत्यर्थः। तावत् मध्ये नोऽस्माकमायुर्मा रीरिषत मा हिंसिष्ट।।

माता–पिता कहते हैं जहाँ हमारे बुढ़ापे में हमारे पुत्र पितर हो जावें, अर्थात् पुत्रवाले हो जावें। जबतक हमारे पौत्र न हों, तब तक हे परमात्मन्! आप हमारी आयु का नाश न कीजिए, यानी हम जीवित रहें।

इस मन्त्र में तो महीधर ने वेदभाष्य करते हुए पौराणिक मण्डल की कमर तोड़ डाली है। महीधर ने यह स्वीकार किया है कि पुत्रों की भी, जब उनके पुत्र हो जाते हैं पितर संज्ञा हो जाती है। पितरों की ओर से ही प्रार्थना है कि जब तक हमारे पुत्र पितर न बनें, पुत्रोंवाले न हों तब तक हम जीवित रहें। इस वेदमन्त्र व महीधर के भाष्य से पौराणिक पण्डितों का दावा कि मृतकों की ही पितृसंज्ञा है, सर्वथा गलत सिद्ध हो जाता है।

ऊपर हमने तीन वेदमन्त्र महीधरभाष्य के साथ देकर यह सिद्ध कर दिया है कि जीवितों की ही पितृसंज्ञा है।

इसकी पुष्टि के लिए अन्य प्रमाण भी दिये जाते हैं।

विद्यादाताऽन्नदाता च भयत्राता च जन्मदः।
कन्यादाता च वेदोक्ता नराणां पितरः स्मृताः।।
– ब्रह्म० वै० गण० ६।४७।२१

ज्येष्ठो भ्राता पिता वापि यश्च विद्यां प्रयच्छति।
त्रयस्ते पितरो ज्ञेयाः धर्मे च पथिवर्तिनः।।
– वा०रा०कि० १८।१३

विद्या देनेवाला, अन्न देनेवाला, जन्मदाता, कन्या देनेवाला और बड़ा भाई इनकी 'पितृ' संज्ञा है। बड़ा भाई, पिता और विद्यादाता–ये तीनों पितर हैं, यदि धर्म के मार्ग पर चलते हों।

उपर्युक्त पुराण व वाल्मीकि रामायण के प्रमाणों से यही सिद्ध होता है कि जीवितों का नाम ही पितर है, मृतकों का नहीं।

भोजन विचार

द्वौ मासौ मत्स्यमांसेन त्रीन्मासान् हारिणेन तु ।। २६८।।
दशमासांस्तु तृप्यन्ति वराहमहिषामिषैः।।

शशकूर्मयोस्तु मांसेन मासानेकादशैव तु ।। २७०।।
वाध्रीणसस्य मांसेन तृप्तिदर्शवार्षिकी ।। २७१।।

कालशाकं महाशल्काः खड्गलोहामिषं मधु।
अनन्त्यायैव कल्प्यन्ते मुन्यन्नानि च सर्वशः।। २७२।।
–मनु० अ० ३

दो महीने मछली के मांस से, तीन मास हिरन के मांस से, दस महीने सुअर तथा भैंसे के मांस से, ग्यारह महीने खरगोश तथा कछुए के मांस से, वाध्रीणस हिरन के मांस से बारह वर्ष तथा लम्बे कानवाले बकरे के मांस से पितर अनन्त काल तक तृप्त रहते हैं।

कहिए पोपजी! मनुस्मृति में यह प्रक्षिप्त प्रकरण लिखकर भी भोजन कैसा बढ़िया बतलाया है ? बस, एक लम्बे कानवाले बकरे का मांस ब्राह्मणों को खिला दीजिए और मृतक श्राद्ध से हमेशा के लिए छुट्टी पाइए।

शंका – यह जो मच्छी आदि का मांस लिखा है, यह राक्षसों के लिए लिखा है, श्रेष्ठ पुरुषों के लिए नहीं।

समाधान – राक्षसों के लिए नहीं पितरों व ब्राह्मणों को ही खिलाना लिखा है। इसके कारण निम्नलिखित हैं–

१. यहाँ पर लिखा है कि मछली आदि के मांस से पितर तृप्त होते हैं। क्या आपका दिया हुआ भोजन पितरों को मिलता है या नहीं। अगर मिलता है तो आपके पितरों को मछली आदि का मांस मिला। क्या आपके पितर भी राक्षस हैं?

२. हमारी चुनौती है कि इस पितृ–प्रकरण में यह कहीं नहीं लिखा कि मांस–भोजन राक्षसों के लिए है। अगर हिम्मत है तो दिखाओ।

३. बल्कि इसके विपरीत लिखा है –

यत्र ये भोजनीयाः स्युर्ये च वर्ज्या द्विजोत्तमाः।
यावन्तश्चैव यैश्चान्नैस्तान्प्रवक्ष्याम्यशेषतः।।

उस मृतक श्राद्ध में जिन उत्तम ब्राह्मणों को खिलाना चाहिए और जिनको नहीं खिलाना चाहिए, जितनों को खिलाना चाहिए, जो अन्न खिलाना चाहिए, वह सब मैं बताऊँगा।

इस श्लोक में स्पष्ट लिखा है कि यह श्राद्ध उत्तम ब्राह्मणों के लिए है, अनधिकारियों को नहीं। जब अनधिकारी ब्राह्मणों को श्राद्ध खाने पर अधिकार नहीं तब राक्षसों को कैसे हो सकता है ?

नियुक्तस्तु यथान्यायं यो मांसं नात्ति मानवः।
से प्रेत्य पशुतां याति संभवानेकविंशतिम्।।
– मनु० ५। ३५

कुल्लूकभाष्य–श्राद्धे मधुपर्के च यथाशास्त्रं नियुक्तः।

श्राद्ध में या मधुपर्क में शास्त्र की आज्ञानुसार नियुक्त हुआ जो मनुष्य मांस नहीं खाता वह, मरकर इक्कीस बार पशुयोनि में जाता है।

कहिए पोपजी ! तुम तो कहते थे मांस राक्षसों के लिए है, परन्तु यहाँ तो मांस न खानेवाले के लिए बड़ा भारी दण्ड लिखा है। यदि यह राक्षसों का अन्न था तो न खानेवालों को इतना बड़ा दण्ड क्यों लिखा? दूसरी बात यह है कि यहाँ पर मनुष्य के लिए मांस का खाना लिखा है। आपके सिद्धान्त के अनुसार तो राक्षस मनुष्यों से भिन्न होते हैं। इसलिए आपका यह कथन मिथ्या है कि श्राद्ध में मांस–विधान राक्षसों के लिए है।

नियुक्तस्तु यतिः श्राद्धे दैवे वा मांसमुत्सृजेत्।
यावन्ति पशुरोमाणि तावन्नरकमिच्छति।।

– वा० ३४।११ (वा से क्या तात्पर्य है, हमें पता नहीं लगा। वायु, वामनपुराण और वाल्मीकि रामायण में तो यह श्लोक नहीं है। – जगदीश्वरानन्द)

जो कोई ब्राह्मण व संन्यासी श्राद्ध अथवा देवयज्ञ में मांस न खावे, वह उतने वर्ष नरक में रहेगा, जितने उस पशु को बाल हैं।

यदि श्राद्ध का भोजन राक्षसों के लिए हो तो यह लाखों साल नरक में रहने का दण्ड क्यों दिया जाता।

इससे सिद्ध है कि श्राद्धों में घणित मांस– भोजन का विधान है और श्राद्ध, वेदशास्त्र के विरुद्ध होने से अवैदिक हैं।

अधिकारी

तीसरी बात जो मृतक श्राद्ध में है वह यह है किनको भोजन खिलाना चाहिए। जहाँ तक हमने पौराणिक ग्रन्थों का अध्ययन किया है वहाँ तक यह पता चलता है कि मृतक श्राद्ध हो ही नहीं सकता।

चिकित्सकान् देवलकान्मांसविक्रयिणस्तथा।

– मनु० ३।१५

सोमविक्रयिणो विष्ठा भिषजे पूयशोणितम्।
नष्टं देवलके दत्तमप्रतिष्ठं तु वार्धषौ ।।१८०।।
यावतो ग्रसते ग्रासान् हव्यकव्येष्वमन्त्रवित्।
तावतो ग्रसते प्रेत्य दीप्तशूलऽयोगुडान् ।।१३३।।

– मनु० ३।१८०,१३३।।

ज्योतिर्विदो ह्यथर्वाणः कीराः पौराणपाठकाः।
श्राद्धे यज्ञे महादाने न वरणीयाः कदाचनः ।।३८५।।
पतन्ति पितरो ह्येषां दानं चैव तु निष्फलम् ।।३८६।।

(इस श्लोक में पाठभेद है।)

आविकश्चित्रकारश्च वैद्यो नक्षत्रपाठकः।
चतुर्विप्राः न भोज्यन्ते बृहस्पतिः समा अपि ।।३८५।।

– अत्रिस्मृ० ३८५–३८७

वैद्यों को, पुजारियों को, मांस बेचनेवाले को, दुकानदारों को, सोम बेचनेवाले को श्राद्ध में भोजन नहीं खिलाना चाहिए। जो इनको व वेद के न जाननेवालों को भोजन खिलाएगा अथवा जो खाएगा उन दोनों के मुख में गर्म करके लोहे के गोले, त्रिशूल आदि ठूँसे जाएँगे। ज्योतिषी तथा कंजूस व पुराण के पढ़नेवालों को, श्राद्ध, यज्ञ व महादान में भोजन के लिए कभी भी नहीं बैठना चाहिए, क्योंकि इनको भोजन खिलाने व दान देने से पितर पतित हो जाते हैं और दान निष्फल जाता है, इसलिए इनको कभी श्राद्ध में भोजन नहीं खिलाना चाहिए। भेड़ पालनेवाले, चित्रकार, वैद्य तथा ज्योतिषी इन चार ब्राह्मणों को बृहस्पति के समान होने पर भी भोजन नहीं खिलाना चाहिए।

मैं पौराणिक पण्डितों से पूछता हूँ कि इस लिस्ट के अनुसार क्या तुम्हारा मृतक श्राद्ध हो सकता है ? यहाँ पर पुजारी, व्यापारी, वैद्य, ज्योतिषी, दुकानदार, दस्तकार, वेद के न जाननेवाला–इन सबको भोजन न खिलाने का ही विधान नहीं है बल्कि खिलाने व खानेवालों को बड़ा भारी दण्ड लिखा है और पितरों का पतन लिखा है। इसलिए पौराणिक ग्रन्थों के अनुकूल भी मृतक श्राद्ध नहीं हो सकता। मृतक श्राद्ध करनेवालों को चाहिए कि वे इस दण्ड से बचने के लिए मृतक श्राद्ध को सर्वथा त्याग दें। एक तो श्राद्ध करना दूसरे दण्ड भोगना इससे क्या लाभ है?

भोजन पहुँचने का साधन

चौथा प्रश्न यह है मृतपितरों को भोजन कैसे पहुँचता है ? आर्यसमाजी व पौराणिक इस बात को स्वीकार करते हैं कि मरकर जीव का पुनर्जन्म होता है। फिर यह विचारणीय बात है कि जब उन्होंने जन्म ले–लिया फिर उन्हें भोजन कैसे पहुँचेगा? इस विषय में पौराणिकों का कोई निश्चित सिद्धान्त नहीं है। कई कहते हैं कि जिस–जिस योनि में पितर हैं, वहाँ–वहाँ उसी योनि के अनुकूल भोजन पहुँच जाता है। कइयों का कथन है कि पितर पितृलोक में जमा रहते हैं, वहीं भोजन पहुँचता है। तीसरे कहते हैं कि पितरलोग यहीं भोजन खाने के लिए आते हैं, क्योंकि पौराणिकों का इस विषय में कोई निश्चित सिद्धान्त नहीं है इसी से सिद्ध है मृतक श्राद्ध असत्य है। एक दो उदाहरण नीचे दिये जाते हैं।

निमन्त्रितास्तु ये विप्राः श्राद्धपूर्वदिने खग।
प्रविश्य पितरस्तेषु भुक्त्वा यान्ति स्वमालयम् ।।२६।।

श्राद्धकर्त्ता तु यद्येकः श्राद्धे विप्रो निमन्त्रितः।
उदरस्थः पिता तस्य वामपार्श्वे पितामहः ।।२७।।

प्रपितामहो दक्षिणतः पृष्ठतः पिण्डभक्षकः।।२८।।

–गरुड पु० प्रे० अ० १० । २६–२८

श्राद्ध करनेवाला अगर एक ब्राह्मण को श्राद्ध में भोजन खिलाये तब ब्राह्मण के पेट में बैठकर श्राद्ध करनेवाले का पिता भोजन खाता बाँई कोख पर बैठकर दादा, दाँई पर परदादा और पीठ पर पिण्ड खानेवाला। पौराणिको ! कहो, यह तुम्हारा भोजन खिलाने का कैसा तरीका है ? पेट के अन्दर क्या होता है, क्या वहाँ सोहन हलुवा रक्खा है वा ठाकुरजी का भोग? कुक्षी में बैठकर क्या ब्राह्मण जौंक की भाँति खून पीता है। इस गुरुड़पुराण के श्लोक से सिद्ध है कि पितर लोग यहाँ भोजन खाने आते हैं और वे ब्राह्मण के खाने के बाद उस के मल, खून आदि का भोजन खाते हैं। इससे उल्टा नीचे का सिद्धान्त देखिए।

गान्धर्वे भोगरूपेण पशुत्वे तु तृणं भवेत्।
श्राद्धं तु वायुरूपेण नागत्वेऽप्यनुगच्छति।५।

फलं भवति पक्षित्वे राक्षसेषु तथामिषम्।
दानवत्वे तथा मांसं प्रेतत्वे रुधिरं तथा।६।

मनुष्यत्वेऽन्नपानादि बाल्ये भोगरसो भवेत्।।
–ग० प्रे० अ० १० । श्लो० ५ से ७ तक

श्राद्ध में दिया हुआ अन्न किसी का पितर गन्धर्व बन गया हो तो भोगरूप से, पशु बन गया हो तो घास बनकर मिलता है। साँप बन गया हो तो हवा के रूप में, पक्षी की योनि में जन्म लिया हो तो फल बनकर, राक्षसों की योनि में मांस बनकर मिलता है। प्रेत हो तो खून बनकर, मनुष्य हो तो अन्नपान के रूप में, बच्चा हो तो रस बनकर मिलता है।

इस श्लोक ने तो पौराणिक मृतक श्राद्ध पर पानी फेर दिया है। इससे पौराणिकों की पितर, पितृलोक आदि सब बातें उड़ जाती हैं। जैसे ऊपर लिखा था कि पितर लोग यहाँ भोजन खाने आते हैं या उनको पितृलोक में पहुँचता है? परन्तु यह सिद्धान्त सर्वथा ऊपर के सिद्धान्त के विरुद्ध है। अगर किसी का बाप मरकर सूअर बन गया हो तो क्या उसको विष्ठा के रूप में भोजन मिलेगा? अगर ऐसा है तो यह कितना अन्याय है। वह ब्राह्मणों को तो खीर–पूड़ी खिलाता है। और उसका बदला मल है। अगर कोई वैष्णव श्राद्ध करेगा वह मांस के विरुद्ध है और उसका भोजन मांस बनकर मिलेगा। और यह प्रत्यक्ष के विरुद्ध भी है, क्योंकि जितने प्राणी हैं वे किसी–न–किसी के पितर हैं और उनमें से किसी को भी श्राद्धों का भोजन नहीं मिल रहा। इस सिद्धान्त के अनुसार श्राद्ध करनेवालों को चाहिए कि कभी ब्राह्मणों को घास खिलावें, कभी मांस, कभी रक्त पिलावें, कभी कंकर, क्योंकि चकोर कंकर–पत्थर खाता है।

अनेक योनियों का अनेक प्रकार का भोजन होता है वह बदलबदलकर खिलाना चाहिए, क्योंकि इस बात का तो निश्चय ही नहीं कि पितर किस योनि में गया है? नीचे मृतक श्राद्ध के बारे में कुछ प्रश्न दिये जाते हैं, जिनसे पाठकों व शास्त्रार्थ करनेवालों को लाभ पहुँचेगा।

१. ब्राह्मणों को खिलाया हुआ भोजन पितरों को पहुँच जाता है, इसके लिए युक्ति व वेद का प्रमाण दो।

२. जब मरने के पश्चात् मृतक की हड्डियाँ गङ्गा में डाल दी जाती हैं और पौराणिकों के अनुसार उस मृतक की मुक्ति हो जाती है और मुक्तपुरुष का खाने–पीने आदि से कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता वह ब्रह्म बन जाता है, फिर मृतक श्राद्ध खाने कौन आवेगा?

३. दशगात्र, सपिण्डीकरण, पिण्डदान आदि बातों के लिए कोई वेदमन्त्र पेश करो। हमारा दावा है कि ये सब बातें अवैदिक व कपोलकल्पित हैं।

४. अथर्ववेद के अट्ठारवें काण्ड के सब मन्त्रों का विनियोग सायणाचार्य ने अन्त्येष्टि संस्कार में किया है, फिर उनको मृतक श्राद्ध में लगाना क्या सायणाचार्य के विरुद्ध नहीं है ?

५. भोजन पितरों को ब्राह्मण के द्वारा पहुँचता है या वैसे ही ? यदि कहो वैसे ही पहुँचता है तब फिर ब्राह्मणों को भोजन खिलाने की क्या आवश्यकता है? यदि कहो कि ब्राह्मण के द्वारा पहुँचता है। तब भोजन खिलाने के बाद व पहले ब्राह्मण को व भोजन को तोलना चाहिए। यदि भोजन खाने के पश्चात् भोजनसहित पूरा हो तब तो समझो कि भोजन नहीं पहुँचता। यदि वजन कम हो जाए तब जानो पितरों को भोजन पहुँचा है।

६. ब्राह्मण के खाने के बाद क्या पितरों को उसका रक्त–मांस आदि पहुँचता है या कुछ अन्य? इसके लिए प्रमाण दो।

७. ब्राह्मण को खिलाया भोजन बिना पते के पितरों को पहुँच जाता है, इसमें क्या प्रमाण है ? किसी के जीवित माता–पिता को यदि एक मकान में बन्द करके बाहर ब्राह्मणों को भोजन खिलाया जावे तो क्या खिलानेवाले के माँ–बाप को मिल जाएगा? यदि पता होने पर भी भोजन नहीं मिलता तब जिन माता–पिता को कुछ भी पता नहीं है उनको लापता डाक कैसे मिल जाएगी?

८. यदि पौराणिक मृतकों का श्राद्ध मानते हैं तब तीन पीढ़ी का ही श्राद्ध क्यों करते हैं, दूसरों का क्यों नहीं करते ? वास्तव में बात यह है कि पिता, दादा, परदादा जीवित रह सकते हैं, इसलिए तीन पीढी का श्राद्ध है। इससे भी सिद्ध है कि श्राद्ध जीवित का होता है। मृतक का नहीं।

९. यदि किसी के चार पुत्र हैं और वे चारों भिन्न–भिन्न स्थानों में रहते हैं और एक ही दिन श्राद्ध करते हैं तब पितर किसका श्राद्ध खाने जावेगा? यदि एक का खाया तो तीन का तो ब्राह्मण मुफ्त में उड़ा जाएँगे।

१०. देहली की शान्ति नाम की कन्या थी, उसने अपने पिछले जन्म के सास–ससुर, जेठ, पुत्रादि के मथुरा में सब हाल बतला दिये और उसके लिए बाकायदा कमिशन बैठा कि जिसमें मुसलमान भी शामिल थे और उन्होंने यह निश्चय किया कि यह सब हाल ठीक थे और उससे यह सिद्ध हो गया शान्ति का पुनर्जन्म हो गया। अब तुम्हारा पितृलोक, पितर व श्राद्ध खिलाना कहाँ गया? क्योंकि वह दिल्ली में मौजूद है और कहीं श्राद्ध खाने नहीं जाती।

११. अगर किसी का पिता मरकर बकरा बन जाए और वह उसी को मारकर पिता का श्राद्ध करे, तब पिता को मार कर किया गया श्राद्ध किसको मिलेगा? कल्पना करो कि किसी का बाप मरकर उसी के घर में पैदा हो गया तब पिता तो पुत्र बन गया, मृतक श्राद्ध किसको मिलेगा?

१२. जीव की पितृसंज्ञा है व शरीर की? यदि कहो शरीर की तो वह जल गया। यदि कहो जीव की तब गलत है, क्योंकि अकेले जीव में पिता–पुत्र भाव नहीं होता और वह पुत्रों के घर में अथवा पशु–पक्षियों के घर में भी पैदा हो सकता है, इसलिए उसकी पितृसंज्ञा नहीं होती। इससे सिद्ध है कि जीवसहित शरीर का नाम ही पितर है। और वह जीवित होता है, मृतक नहीं।

१३. पद्मपुराण के उतरखण्ड अध्याय ७८ में कथा आती है कि किसी के माँ–बाप मरकर उसी के घर कुतिया व बैल बन गये उसने उनका श्राद्ध किया और उनको नहीं मिला, अपितु कुतिया की कमर उसकी बहू ने तोड डाली और बैल भूखा मर गया। इससे साफ प्रकट है कि मृतकों को श्राद्ध नहीं मिलता।

शंका–संस्कार विधि में स्वामी दयानन्दजी ने स्नातक का अपसव्य होकर जमीन पर पानी छोड़ना लिखा है, इससे मृतक श्राद्ध सिद्ध है।

समाधान–अपसव्य के अर्थ जनेऊ बदलना नहीं है, बल्कि दक्षिण शरीर वा दक्षिण की ओर घूमना है। जैसे अमरकोष काण्ड ३ वर्ग १ में लिखा है।

वामं शरीरं सव्यं स्यादपसव्यं तु दक्षिणम्।।८४।।

बायें शरीर का नाम सव्य और दाएँ का नाम अपसव्य है। ब्रह्मचारी का मुख पहले पूर्व की ओर होता है और फिर वह दक्षिण की ओर घूमकर आचार्यों से निवेदन करता है कि जैसे यह पानी शान्ति देनेवाला है वैसे आपने भी मुझे विद्यादि गुणों से शान्ति प्रदान की है, दूसरों को भी शान्ति दीजिए।

विवाह संस्कार में भी लड़के–लड़की पर जल के छीटें देकर जल की महिमा लिखी है। यहाँ पर मृतक श्राद्ध की गन्ध भी नहीं है।

शंका–दुनिया में पिता का धन पुत्र को मिलता है, वैसे ही पिता का कर्म पुत्र को मिल जाएगा।

समाधान–यह बात गलत है कि पिता का कर्म पुत्र को मिलता है, प्रत्युत सिद्धान्त यह है कि जो धनवान् वा गरीबों के घर में जन्मते हैं, वे अपनी प्रारब्ध के अनुसार जन्म लेते हैं। एक का कंगाल घर में तथा दूसरे का धनी घर में पैदा होना अपने प्रारब्ध कर्म के सिवाय नहीं हो सकता। कई पिता की सम्पत्ति से वंचित रह जाते हैं और कइयों को मिल जाती है, यह सब अपने कर्मों का खेल हैं।

दूसरी बात यह है कि दुनिया की राज–प्रजाओं के कायदे में गलती व अन्याय भी हो सकता है, परन्तु परमात्मा का न्याय अटल है । जो कोई करेगा वही भरेगा। प्रभु के न्याय में दूसरे का कर्म दूसरे को नहीं मिलेगा। श्राद्ध के विषय में अधिक जाननेवाले मेरी श्राद्ध मीमांसा देखें।

लेखक – ✍पंडित बुद्धदेव मीरपुरी (पुस्तक – मीरपुरी सर्वस्व)

आर्ष क्रान्ति पत्रिका के लिए आर्य लेखक बन्धु अपनी सर्वश्रेष्ठ रचनाएँ भेंजें।

मैं शिक्षक हूं

मैं शिक्षक हूं, मुझे नहीं कुछ भी लेना है।
मेरा काम तुम्हें बस देना ही देना है।
मैं अतीत, मैं वर्तमान हूं, मैं भविष्य हूं तेरा।
मुझसे ही आलोकित पल पल जीवन पथ यह तेरा।
मैं हूं आशादीप, भंवर में मैं तेरा मांझी हूं।
तेरे चिंतन की धारा मैं, तुझसे अलग नहीं हूं।
तेरे कर्मों की नैया को मुझको ही खेना है।
मैं शिक्षक हूं मुझे नहीं कुछ भी लेना है।।

मैंने उंगली थाम तुम्हारी चलना है सिखलाया।
हित अनहित और सत्य झूठ का तुमको बोध कराया।
मात पिता और सखा भ्रात बन हर कर्तव्य निभाया।
कोटि–कोटि मनुजो में तुमको हीरे सा चमकाया।
तुझे सुखों की सुधा पिलाकर हर दुख हर लेना है।
मैं शिक्षक हूं मुझे नहीं कुछ भी लेना है।।

सपने को साकार बनाकर तार तुम्हें देता हूं।
अपनी सकल कलाओं का उपहार तुम्हें देता हूं।
जीवन के झंझावातों में हंसना सिखलाता हूं।
लक्ष्य सिद्धि का मंत्र बता, मंजिल तक पहुंचाता हूं।
अपना हृदय तुम्हें ही देकर सब कुछ पा लेना है।
मैं शिक्षक हूं मुझे नहीं कुछ भी लेना है।।

राम,कृष्ण, महावीर, बुद्ध का मैं ही भाग्यविधाता।
भीष्म, द्रोण, अर्जुन सम अगणित वीरों का निर्माता।
कपिल, कणाद, पतंजलि से कितने ऋषि उप जाए हैं।
तुलसी, सूर, कबीर सरीखे संत बहुत जाए हैं।
गले लगाकर पतितो को भी पावन कर देना है।
मैं शिक्षक हूं मुझे नहीं कुछ भी लेना है।।

मैं पारस हूं मुझसे छू कर स्वर्ण तुम्हें बनना है।
अभी लक्ष्य है दूर, अभी तो बहुत दूर चलना है।
संकल्पों की अग्नि बुझे ना ध्यान सदा यह रखना।
कुछ भी हो पर निज चरित्र का भान सदा ही रखना।
सत्य, अहिंसा, न्याय, धर्म हित तन मन दे देना है।
मैं शिक्षक हूं मुझे नहीं कुछ भी लेना है।।

– वेद कुमार दीक्षित
देवास (म.प्र)

मानव हूँ

मानव हूँ मानवता की बात करुँगा,
एक बार नहीं मैं तो दिन–रात करुँगा।
बैर मेरा तम भरी काली रातों से –
मैं उज्ज्वल प्रकाश की बात करुँगा।।

भेदभाव, आडंबर का हो विनाश,
फैले जग में सत्य ज्ञान प्रकाश ।
भारत बने हमारा विश्वगुरु –
अज्ञान–अंधेरे का हो सर्वनाश ।।

ओउम ध्वजा फहराये घर–घर,
ज्ञान–यज्ञ, वेदकथा हो हर–घर ।
ये जग ही स्वर्ग बन जायेगा –
मिट जायेगा हर आसुरी ड़र ।।

– मुकेश कुमार ऋषि वर्मा
ग्राम रिहावली, डाक तारौली,
फतेहाबाद, आगरा

हिंदी और भारतीय भाषाओं का अंतर्सम्बंधः सामाजिक व सांस्कृतिक चेतना के लिए आवश्यक

– अखिलेश आर्येन्दु

विश्व आज जिस दौर से गुजर रहा है, उसमें कई स्तरों पर बदलाव आए हैं। भूमंडलीकरण के कारण लोगों के सांस्कृतिक, भाषाई और देशज सोच में बदलाव आए हैं। भारतीय समाज में इस बदलाव का असर कहीं अधिक देखा जा रहा है। जिससे लोगों में मूल्यों से अधिक सुख–सुविधाओं के प्रति कहीं ज्यादा मोह बढ़ा है। पैसा जीवन का पर्याय बन गया है। सांस्कृतिक और भाषाई चेतना धीरे–धीरे बदलती या गायब होती दिखाई पड़ रही है। ऐसे में सांस्कृतिक और भाषाई चेतना को लेकर संकट महसूस होना लाजिमी है।

जिस प्रकार से संस्कृतियों का वर्षों से अंतर्संबंध रहा है उसी तरह से भाषाई अंर्तसंबंध भी रहा है, लेकिन इस अंतर्संबंध को हमने कभी गहराई से समझने का प्रयंत्न किए ही नहीं। यही कारण है हम एक देश में रहते हुए भी आंचलिकता और अदृष्टता के संकीर्ण खूंटे में बंधे रहे और इसी को पूर्णता समझते रहे। इस संकट को महर्षि दयानंद और महात्मा गांधी ने स्वतंत्रता के बहुत पहले ही समझ लिया था। इतना ही नहीं, अंग्रेजी के सम्मोहन में बधे भारतीयों की मनःस्थिति का अनुभव भी कर लिया था। अंग्रेजी का खतरा केवल हिंदी के लिए ही नहीं अपितु भारतीय भाषाओं पर ही उसी तरह से है। गांधी कहते हैं–**आप और हम चाहते हैं कि करोड़ों भारतीय आपस में अंतप्रान्तीय संपर्क कामय करें। स्पष्ट है कि अंग्रेजी के द्वारा दस पीढ़िया गुजर जाने के बाद भी हम परस्पर संपर्क स्थापित न कर सकेंगे।** स्पष्ट है सात दशक व्यतीत हो जाने के बाद भी गांधी द्वारा महसूस किया गया भाषाई संकट आज भी उससे कहीं अधिक गहरा हो गया है। हम भले ही इसे राजनीतिक षड्यंत्र या स्वार्थ का परिणाम बताएं लेकिन सच यह भी कि हिंदी और हिंदीतर भाषाओं का आपसी भाईचारा कायम करने में यह सबसे बड़ा बाधक रहा है। अब जबकि हिंदी का संकट अन्य कई तरह से हमारे सामने द्रष्टव्य होने लगा है, भारतीय भाषाओं का आपसी भाईचारा का मुद्दा गौड़ होता जा रहा है। ऐसे में डॉ. रामविलास शर्मा का यह कथन कितना प्रासंगिक हो जाता है –**हिंदी अंग्रेजी का स्थान ले, इसकी बजाय यह वातावरण बनाना चाहिए कि सभी भारतीय भाषाएँ अंग्रेजी का स्थान लें।**

हिंदी की व्यापकता का दायरा उसके संग्रहणीयता और उदारता के कारण है। यही कारण है कि देश के प्रत्येक अंचल में हिंदी उस आंचलिक भाषाई मिठास के रूप में उपस्थित है। लेकिन यह मिठास तब खटास में बदल जाती है जब इसमें अंग्रेजी की घृणात्मकता का तथाकथित विकास, भूमंडलीकरण और उदारीकरण के नाम पर मिलाई जा रही कृतिमता, उसकी मौलिकता और नवीनता को खत्म करने का कार्य करने लगती है। स्पष्ट है, हिंदी में उदारता के नाम पर उसे उसकी मौलिकता, नवीनता और सृजनात्मकता को धुर्सित किया जा रहा है। हिंदी भारतीय भाषाओं की मिठास, नवीनता और सृजनात्मकता की पावनी पवित्रता से वंचित होती जा रही है। इसे इस रूप में भी हम समझ सकते हैं कि हिंदी अंग्रेजी की अवैज्ञानिकता, दबंगई और विचित्रात्मकता के कारण 'हिंग्लिश' के रूप में अपना स्वभाव खोती जा रही है और 'निर्मित' होने की जगह खंडहर में बदलती जा रही है। आवश्यकता है भारतीय भाषाओं के शब्दों, शैलियों और सांस्कृतिक चेतना से लबरेज होकर हिंदी और भी सहज और संग्रहणीय बने, लेकिन हो रहा है इसका ठीक उल्टा। इससे हिंदी का अन्य भारतीय भाषाओं का अंतर्संबंध बढ़ने और गहरे होने के स्थान पर दूरूह होते जा रहे हैं। इस पर दृष्टि डालने की आवश्यकता है।

भारत सांस्कृतिक विविधता के साथ ही साथ भाषाई विविधता वाला देश है। कोस–कोस पर बदले पानी चार कोस पर बदले वाणी की कहावत इसी परिपेक्ष्य में प्रचलित रही है। अनेक बदलावों के बाद भी आज भारत की सांस्कृतिक और भाषाई विविधता अपने मूल स्वरूप में कायम दिखती है। जब हम भाषाई विविधता

की बात करते हैं तो हमारे सामने भारत में बोली जाने वाली प्रादेशिक भाषाओं की बात ही नहीं आती बल्कि सैकड़ों की तादाद में बोली जाने वाली बोलियां भी इसमें सम्मिलित होती हैं। भारतीय संस्कृति और समाज के विकास में किसी के योगदान को नकारा नहीं जा सकता है। हमारे लिए जितनी महत्वपूर्ण हिंदी है उतनी ही तमिल, तेलुगु, कन्नड़, पंजाबी, डोगरी, बोडो, मलयालम, बंगला, असमिया, मराठी और कश्मीरी है। यदि हिंदी राजभाषा और राष्ट्र भाषा–रूपी गंगा की धारा है तो अन्य प्रदेशिक भाषाएं भी कवेरी, सतलज और ब्रह्मपुत्र की धाराएं हैं। जैसे सभी नदियां बहते हुए समुद्र में मिलकर एक हो जाती हैं उसी तरह से भारत की सभी भाषाओं का मिलान भी निरंतर होता रहता है। सुब्रह्मण्यम भारतीय ने कभी कहा था–**भारत माता भले ही 18 भाषाएं (अब 22 हो गई हैं) बोलती हों, फिर भी उसकी चिंतन प्रक्रिया एक ही है।**

आज भूमण्डलीकरण का दौर है। भाषा–संस्कृति की महत्ता बाजारवाद के आगे दबती नजर आ रही है। लेकिन इस बात को नहीं नकारा जा सकता कि भारतीय भाषाओं के अंतर्संबंध तथा भारतीय संस्कृति की विराटता आज कहीं पहले से अधिक महत्व का हो गये हैं। अपनी पहचान के लिए हमें हर हाल में, इस संबंध को समझना और जीना होगा। बिना इसके भारतीयता का कोई अर्थ नहीं रह जाता है। इन्हीं से हमारी पहचान है। हिंदी छह दशक पहले इस देश की राजभाषा बनी थी, लेकिन राष्ट्रभाषा कब बनेगी, इसपर कोई न तो राजनेता बोलने की स्थिति में हैं न तो हिंदी के ध्वजवाहक ही। यह जानते हुए भी कि हिंदी को भारत की पहचान के लिए जीवित रहना ही नहीं मुखर रहना भी आवश्यक है। और हिंदी न तो बिना भारतीय भाषाओं के सहयोग से जीवित रह सकती है और न भारतीय भाषाएं हिंदी के बिना जिंदा रह सकती हैं। सदियों से हिंदी और भारतीय भाषाओं का जो अंतर्संबंध रहा है, वह सहोदर बहनों की तरह रहा है। कन्या कुमारी से लेकर कश्मीर तक भारत को एकता के सूत्र में बांधने का कार्य यदि किसी भाषा ने किया तो वह हिंदी है। इस लिए हिंदी किसी भारतीय भाषा के लिए खतरा बनेगी, प्रश्न ही नहीं उठता है। हिंदी और भारतीय भाषाओं को खतरा तो अंग्रेजी और हिंग्लिश से है। इस लिए वक्त की नजाकत को समझते हुए प्रत्येक देशवासी को हिंदी या भारतीय भाषाओं के संबंधों पर सवाल न उठाकर अंग्रेजी की बढ़ती एकाधिकारिता पर सवाल उठाने चाहिए और इससे सावधान रहना चाहिए। अब समय आ गया है कि हिंदीतर भाषी प्रदेशों को नए सिरे से हिंदी को अपनी प्रान्तीय भाषा के संबंधों से विचार–विमर्श करना चाहिए।

भाषा के बिना न तो किसी देश की कल्पना की जा सकती है और न तो किसी समाज की ही। इस लिए भाषा की उपेक्षा का मतलब स्वयं अपने अस्तित्व को ही नकारना। जैसे विविधताओं के बीच भी सांस्कृतिक आदन–प्रदान कभी नहीं रुकता इसी तरह भाषाई विविधता के होते हुए भी भाषाओं के मध्य आदान–प्रदान नहीं रुकता। वह चाहे भाषाई संस्कृति के रूप में हो, या व्याकरणिक रूप में या वचनात्मक रूप में हो। भाषाओं के अंतर्संबंध को न तो रोका जा सकता है और न तो समाप्त किया जा सकता है।

हिंदी हमारे देश की राज भाषा के रूप में प्रतिष्ठित है। आजादी के पहले भी यह संपर्क भाषा के रूप में प्रयोग की जाती रही है। यही कारण है कि हिंदी के अनेक शब्द, क्रियापद और संज्ञाएं भारत की अनेक प्रान्तीय भाषाओं में उसी अर्थ में या दूसरे अर्थ में मिल जाते हैं। इतना ही नहीं, हिंदी की सहजता, वैज्ञानिकता और रागात्मकता भी भारत की प्रान्तीय भाषाओं में मिल जाती है। यह सब सहज रूप से हुआ है। हिंदी के लिए जितना हिंदी भाषा–भाषियों के लिए महत्व है उससे कहीं अधिक गैर हिंदी भाषी के लिए महत्व है। वह हिंदी को उसके शुद्धात्मक रूप में अपनाने का कहीं अधिक प्रयास करता है।

हिंदी किसी न प्रान्त की भाषा रही है और न तो किसी जाति, वर्ग या क्षेत्र विशेष की भाषा रही है। हिंदी बहती नदी की धारा की तरह सब के लिए उपयोगी और कल्याणकारी रही है। यही कारण है गैर हिंदी भाषा भाषी क्षेत्रों के हिंदी उन्नायकों ने हिंदी को जन भाषा के रूप में स्वीकार करते हुए इसके उत्थान के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया। वह चाहे गुजराती भाषा भाषी महर्षि दयानंद और गांधी रहे हों,

बंगाल के राजाराम मोहन राय, केशवचन्द्र सेन और रवींद्र नाथ टैगोर तथा नेता सुभाष रहे हों, या महाराष्ट्र के नामदेव, गोखले और रानाडे रहे हों। इसी तरह तमिलनाडु के सुब्रह्मण्यम भारती, पंजाब के लाला लाजपत राय, आंध्र प्रदेश के प्रो. जी. सुंदर रेड्डी जैसे अनेक अहिंदी भाषा भाषी क्षेत्रों में हिंदी को बढ़ावा देने के लिए अनेक महत्वपूर्ण किए।

हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं का अंतर्संबंध प्रगाढ़ होने में सबसे बड़ी बाधा अंग्रेजी रही है। अंग्रेजों ने स्वतंत्रता के पूर्व ही इसका जाल तैयार कर दिया था। और भाषा जो हमारे जीवन, समाज और संस्कृति का अभिन्न अंग है को राजनीतिक रंग दे दिया गया। स्वतंत्रता के 70 वर्षों के बाद आज जब हम हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के संबंधों का अवलोकन करते हैं तो पाते हैं कि यह संबंध सुदृढ़ होने की जगह निरंतर कमजोर हुए हैं। हिंदी वालों को तमिल, तेलगू, कन्नड़, पंजाबी और उड़िया शब्द–संस्कृति में तैरने की जगह अंग्रेजी के जाल–जंजाल में अधिक भाता रहा है। इस बिडम्बना और संकट को वर्षो पूर्व हिंदी के महान् उन्नायक फादर डॉ. कामिल बुल्के ने समझ लिया था। डॉ. बुल्के कहते हैं– ''भारत पहुँचकर मुझे यह देखकर दुःख हुआ कि बहुत से शिक्षित लोग अपनी ही संस्कृति से नितांत अनभिज्ञ हैं और अंग्रेजी बोलना तथा विदेशी सभ्यता में रंग जाना गौरव की बात समझते हैं।''

हम भले की हिंदी का विरोध करने वाले दक्षिण के कुछ राज्यों के अंग्रेजी परस्त राजनेताओं के स्वार्थवादी और संकीर्णवादी विरोध को अपने अनुसार अलग–अलग तर्कों से इसे 'किन्तु–परंतु' में उलझाकर इसके पीछे पीछे मंसूबे को दरकिनार कर दें, लेकिन इस वास्तविकता को ऐसे झुठला सकते हैं कि इसके पीछे मुख्य रूप से भारतीय भाषाई सांस्कृतिक चेतना को कमजोर करने का ही उद्देश्य रहा है। अंग्रेजी को यदि भारतीय अस्तिता, संस्कृति और सुख का पर्याय बनाना है तो सबसे पहले हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के अंतर्संबंधों को कभी मजबूत नहीं बनने देना है। इस घृणित मंसूबे के कारण ही अंग्रेजी का प्रभुत्व लगातार भारतीय भाषाई चेतना को अचेतन बनाता रहा है । हम इस संकट को समझने में निरंतर भूल करते आ रहे हैं। इसे समझने की आवश्यकता है।

इस सच्चाई को हम कैसे झुठला सकते हैं कि आज भी तमिल, कर्नाटक, आंध्र, केरल, त्रिपुरा, असम, महाराष्ट्र, गुजरात जैसे अनेक राज्यों में हिंदी समझने वाले, बोलने वाले ही नहीं हिंदी में लेखन करने वाले सैकड़ों लेखक–पत्रकार मिल जाते हैं, जो हिंदी को संमृद्ध बनाने के लिए पूरे मनोवेग से कार्य कर रहे हैं। इससे हिंदी का अन्य भारतीय भाषाओं के अंतर्संबंधों में मजबूती आ रही है, लेकिन यह आवश्यकता से बहुत कम है। या कहें यह ऊँट में जीरे के समान है। लेखक को भारत सरकार के गैर हिंदी भाषा भाषी पत्रकार –लेखक शिविर में प्रशिक्षक के तैर पर सम्मिलित होने का अवसर मिला है। और उन नव लेखक–पत्रकारों की भाषाई चेतना को नजदीक से देखा समझा है। जिस उत्सुकता और संकल्प को गैर हिंदी भाषा भाषी नवलेखकों में देखने को मिला, वह आश्चर्य में डालने वाला था। यहाँ तक कि तमिलनाडु जहाँ हिंदी का सबसे अधिक विरोध कभी हुआ करता था उस क्षेत्र के नव हिंदी लेखक हिंदी को तमिल के साथ सहअंतर्संबंधों को सबसे अधिक प्रगाढ़ बनाने की बात करते दिखे। इतना ही नहीं, तमिल के शब्दों को हिंदी में प्रयोग करने के आश्चर्यजनक तजुर्बे भी हुए।

हिंदी का स्वभाव और भारतीय भाषाओं का स्वभाव एक जैसा है। किसी भी स्तर पर टकराव नहीं है। फिर क्यों हिंदी का विरोध गैरहिंदी भाषा–भाषी क्षेत्रों में यत्र–तत्र देखा जाता है? यह प्श्न अत्यंत महत्वपूर्ण है। दरअसल, आजादी के पहले अंग्रेजों ने भारतीय भाषाओं का वर्गीकरण कराया था, उसके पीछे न कोई भाषाई तथ्य, व्याकरण और लिपि का आधार था और न ही सांस्कृतिक या धार्मिक ही। भारतीय भाषाओं का वर्गीकरण इस तरह से किया गया कि जिससे यह साबित हो सके कि आर्य भाषा परिवार' की भाषाओं और 'द्रविड़ भाषा परिवार' की भाषाओं में न पूरकता है और न ही कोई अंतर्संबंध ही है। जिससे उन्हें भाषा के नाम पर भी देश को विभाजित कर राज्य करने में सुविधा हो सके। गौरतलब है 'आर्य भाषा परिवार' का नामकरण मैक्समूलर के द्वारा किया गया और द्रविड़

भाषा परिवार' का नामकरण पादरी राबर्ट काल्डवेल के द्वारा किया गया।

आधुनिक भारतीय भाशाविज्ञानिकों की दृष्टि आज भी वैसी ही है जैसी स्वतंत्रता के पूर्व थी। आज भी भाशा वैज्ञानिक यह मानते हैं कि भारत की आर्य भाषाओं का ईरानी, यूनानी, जर्मन और लातीनी भाषाओं से किसी न किसी स्तर पर अंतर्संबंध हैं लेकिन विध्यांचल के दक्षिण में प्रचलित भाषाओं से आर्य भाषाओं का कोई संबंध नहीं जुड़ता है। हम सभी इस बात पर विचार करने के लिए ही तैयार नहीं हैं कि दक्षिण की भाषाएं द्रविड़ परिवार की हैं और उत्तर भारत की भाषाएं आर्य परिवार की । इस धारणा को दृढ़ता प्रदान करने में पादरी कॉल्डवेल की पुस्तक ' द्रविड़ भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन' का योगदान सबसे अधिक रहा है। स्पष्ट है जब भी इस विषय पर चर्चा होती है तो भारत के भाषा वैज्ञानिक उक्त पुस्तक का हवाला देकर यह साबित करने की कोशिश करते हैं कि फादर काल्डवेल का शोध इस सम्बंध में भाषाई अंतर्सम्बंधों को समझने में मील का पत्थर है। वहीं पर इस धारणा को अपने शोधपरक और तथ्यपरक तर्कों से निर्मूल साबित करते हुए कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के पूर्व प्रोफेसर एम.बी. एमनो ने अपने तथ्यपरक निबंध **'भारत एक भाषाई क्षेत्र'** में कहा है**–एक ही भूखंड की भाषा होने के कारण उत्तर और दक्षिण भारतीय भाषाओं की वाक्य रचना में, प्रकृति और प्रत्यय में, शब्द और धातु में, भाव–धारा और चिंतन प्रणाली में और कथन–शैली में प्रत्येक स्तर पर समानता दिखाई पड़ती है।**

भारतीय भाषा आचार्य काशी राम शर्मा ने अपने तथ्यपरक विवेचना से इस धारणा को निर्मूल साबित किया है कि जो अभिलक्षण द्रविण भाषाओं (13 अभिलक्षण माने गए हैं) में पाए जाते हैं वही अभिलक्षण उत्तर की भाषाओं में भी पाए जाते हैं। आचार्य काशीराम के शोध के अनुसार दक्षिण भारत की भाषाएं और हिंदी का उत्स एक ही है। कहने का मतलब यह है कि जो अलगाव विदेशी भाषाविद् भारतीय भाषाओं में देखते हैं वह कहीं न कहीं उनके दुराग्रह और स्वार्थवादी प्रवृति के कारण ही है।

हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में साम्यता एक स्तर पर नहीं है। सैकड़ों की संख्या में ऐसे शब्द हैं जो हिंदी में भी इस्तेमाल किए जाते हैं और अन्य भारतीय भाषाओं में भी । उदाहरण के लिए तेलगु में प्रयुक्त 'दर्जी' शब्द हिंदी में भी प्रयोग होता है और अन्य दूसरी भाषाओं में भी। इसी तरह कागज, ताला, फकीर, ताजा, अम्मा आदि जैसे अनेक शब्दों का प्रयोग हिंदी सहित भारत की अधिकांश भाषाओं में प्रयोग होते हैं। इसी तरह पंजाबी भाषा जो गुरुमुखी में लिखी जाती है के हजारों शब्द हिंदी में प्रयोग में दिखाई देते हैं। वस्तुतः ये शब्द संस्कृत से हिंदी और पंजाबी में प्रयोग में आए। आज दोनों भाषाओं में संस्कृ त के इन शब्दों का प्रयोग धड़ल्ले के साथ किया जाता है। यदि लिपि को छोड़ दिया जाए तो कोई भी हिंदी भाषा–भाषी व्यक्ति जो कुछ पढ़ा–लिखा हो उसे पंजाबी समझ में आ जाती है। इसी तरह पंजाबी को हिंदी समझते देर नहीं लगती। दोनों एक ही भाषा परिवार की मानी जाती हैं। दोनों को प्रयोग सदियों से आपसी भाईचारे को बढ़ावा देने के लिए किया जाता रहा है। पंजाब में मध्यकाल में ब्रज भाषा और गुरुमुखी लिपि में, इसके सुमेल से ही हिंदी साहित्य का सृजन हुआ। गुरु गोबिंद सिंह और इनके दरबारी कवि, पंजाब के दूसरे राज्याश्रित कवि गुरुमुखी लिपि में ब्रज भाषा की रचना करते थे। यह निकटता हिंदी और पंजाबी संस्कृतियों को भी रेखांकित करती है। पंजाबी और हिंदी भाषा के अंतर्संबंध भक्तिकाल, गुरुवाणी और आधुनिक युग के साहित्य में भी सहज सुलभ है। प्रो. पूर्णसिह, अमृता प्रीतम, देवेन्द्र सत्यार्थी और अजीत कौर जैसे न जाने कितने रचनाकार जो पंजाबी पृष्टभूमि के होते हुए भी हिंदी में सब को स्वीकार हुए।

इस बात को कितने लोग जानते हैं कि जिस लिपि देवनागारी में हिंदी–संस्कृत लिखी जाती है उसी लिपि में कश्मीरी और मराठी भी लिखी जाती रही है। लिपि की एकता ने भी हिंदी को मराठी, कश्मीरी को पास आने का अवसर दिया। इसी तरह गुजराती लिपि भी कुछ अंतर से देवनागरी जैसी ही है। गुजराती और हिंदी का अंतर्सम्बंध जगजाहिर है। गुजराती भाषियों ने हिंदी को बढ़ावा देने के लिए क्या नहीं किया। योग्य

इसी तरह मलयालम में अस्सी प्रतिशत शब्द संस्कृत से सीधे ग्रहण किए गए हैं। मलयालम बोलते समय ऐसा लगता है, बोलने वाला संस्कृत का बदले हुए रूप वाली भाषा बोल रहा है।

उच्च स्तर के अनुसंधानों से यह साबित हो चुका है कि हिंदीतर प्रदेशों में रचा गया हिंदी साहित्य परिणाम में अतुलित तो है ही, साहित्यिक विशेषताओं से भी उत्कृष्ट कोटि का है। इस बात को हिंदी भाषा–भाषी क्षेत्र के लोगों को समझनी चाहिए कि जिस प्रकार से हिंदीतर प्रदेशों में हिंदी को समृद्ध बनाने के लिए गैर हिंदी भाषा–भाषी लेखक, पत्रकार और हिंदी प्रचारकों ने अपना जीवन समर्पित करके हिंदी को सर्वसुलभ और सर्वमान्य भाषा बनाने में लगे हुए हैं उसी तरह अन्य भारतीय भाषाओं को भी हिंदी क्षेत्र के लोगों को सीखना चाहिए और जहां तक हो सके, संबंधों में जीना चाहिए। इससे हिंदी और अच्छी तरह से देशभर में आगे बढ़ सकेगी।

आज मीडिया का जमाना है। अंतरजाल (इंटरनेट) के कारण सारा विश्व एक ग्लोबल गांव के रूप में विकसित होता जा रहा है। ऐसे में हिंदी और भारतीय भाषाओं को एक साथ विश्व स्तर पर स्थापित करने के अवसर अधिक बढ़ गए हैं। लेकिन इसके लिए पूरब–पश्चिम और उत्तर–दक्षिण का भेद मिटना चाहिए। अंग्रेजी के प्रति जैसा रोजगार के कारण व्यामोह बढ़ गया है, उसकी जगह हिंदी और भारतीय भाषाओं के प्रति अनुराग पैदा करना होगा। हिंदी विश्व स्तर पर तब अधिक प्रतिष्ठिा प्राप्त कर सकेगी जब उसकी अन्य बहनों यानी भारतीय भाषाओं को भी पूरा सम्मान मिलेगा। स्पष्ट है प्रत्येक भाषा के साथ उसकी अपनी संस्कृति भी होती है। यदि भाषा को बचाना है तो उस भाषा की संस्कृति को भी बचाना आवश्यक है। गौरतलब है, इस भाषाई संस्कृति के कारण है, भारत विविधताओं का देश होते हुए भी हमेशा एक नजर आता है। यह भाषाई विविधता कहीं समाप्त न हो जाए, इसके प्रति हमें सचेत रहने की आवश्कता है। अंग्रेजी के व्यामोह ने हिंदी और भारतीय भाषाओं के अंतर्सम्बंधों में अच्छा–खासा असर डाला है। यही कारण है, शिक्षा के क्षेत्र में जब पूरे देश में हिंदी माध्यम से पठन–पाठन की बात आती है तो हिंदी के विरोध में आवाज बुलंद की जाने लगती है लेकिन अंग्रेजी के नाम पर कोई किसी तरह का विरोध नहीं दिखाई पड़ता है। जब कि अंग्रेजी से हिंदी को जितना खतरा है उतना ही खतरा भारतीय भाषाओं को भी है। इस सच्चाई को यदि हम समझ लें तो भारत की राष्ट्रभाषा की हकदार हिंदी और भारतीयता की पहचान भारतीय भाषाओं पर मडराता संकट समाप्त हो सकता है। एक ही देश की भाषाओं में विरोधाभाष देखना या दिखलाना हमारी अपनी दृष्टि नहीं हो सकती। यह तो विदेशी दृष्टि है, जो हमेशा भाषा और संस्कृति के नाम पर विभाजन की बात करती रही है।

हिंदी महीमा

हिंदी जननी हिंद की, गाथा हिंद महान,
एक छोर तुलसी खड़े, दूजे पर रसखान।।

चटक – मटक जाने नहीं, हिंदी सादा रूप,
मीठी – मीठी यों लगे, ज्यों सर्दी की धूप ।।

हिंदी भाषा प्रेम की, माँ का लाड़ दुलार ।
भला – बुरा जितना कहो, भर – भर बाँटे प्यार ।।

महादेवि दिनकर कहीं, तुलसी सूर प्रसाद ।
हिंदी छंदों की लड़ी, छंद मुक्त आजाद।।

हिंदी को 'हिन्डी' कहें, कितनी पूत महान ।
सूट – साट सा डाट कर, काग हुए विद्वान ।।

हिंदी के झण्डे तले, एक हुए सब वीर ।
सबने मिलजुल कर सही, आजादी की पीर ।।

हिंदी रतिमय सुंदरी, हिंदी रूप मनोज ।
हिंदी के हर शब्द में, प्रेम – प्रीत सद् ओज ।।

हिंदी पथ ईमान का, दया धर्म का नूर ।
चलो चलें सद् मार्ग पर, राम कहाँ फिर दूर ।।

असम हिमाचल केरला, या दिल्ली पंजाब।
हिन्दी से खुशहाल सब, सबको दाना आब।।

कहाँ मिला किसको मिला, हिंदी बिन आधार ?
बिन हिंदी ज्यों रेत पर, नींव धरे संसार ।।

– भारत भूषण आर्य

परिषद्–समाचार

आर्य लेखक परिषद् के तत्वावधान एवं परोपकारिणी सभा अजमेर के विशेष सहयोग से ऋषि उद्यान परिसर में

साहित्यकार सम्मेलन एवं विचार गोष्ठी सम्पन्न

आधार विषय – वर्तमान परिदृश्य में वैदिक वाड.ग्यमय की प्रासंगिकता एवं उपयोगिता

परिचर्चा एवं काव्य गोष्ठी में कई प्रदेशों के साहित्यकारों ने लिया भाग 38 साहित्यकार और विद्वान् आर्ष प्रज्ञा सम्मान से हुए सम्मानित।

सम्मेलन में चालिस से अधिक साहित्यकारों की महत्वपूर्ण रही भागीदारी ऋषि उद्यान के ब्रह्मचारियों ने विशेष सत्रों में लिया भाग वैदिक वांगमय, हिन्दी साहित्य एवं पत्रकारिता पर मूल्यपरक परिचर्चाएं हुईं जीवंत, लक्ष्यपरक, संग्रहणीय, प्रेरणीय लेखन की मुहिम का हिस्सा बने लेखकगण देश भर के वरिष्ठ एवं नवोदित साहित्य साधकों के साथ हुआ खुला संवाद लेखन में सामाजिक सुधार, मानव मूल्य और सांस्कृतिक चेतना पर हुई चर्चाएं उद्घाटन व परिचय सत्र में मौजूद थीं कई साहित्यिक विभूतियां प्रथम दिवस के प्रथम सत्र में वैदिक वांगमय और उसकी प्रासंगिकता पर हुईं परिचर्चाएं दूसरे सत्र में देवनागरी लिपि, आर्य भाषा हिन्दी के संरक्षण एवं प्रचार–प्रसार में आर्य समाज के योगदान विषय पर विद्वानों ने अपने विचार रखे। तृतीय सत्र में समाज सुधार में आर्य समाज व साहित्यकार का योगदान प्रथम दिन के चतुर्थ सत्र में आयोजित हुआ कवि सम्मेलन।

8 सितम्बर को हुईं अनेक महत्व पूर्ण विषयों पर परिचर्चाएं जिनमें वैदिक वांगमय की सार्वकालिकता और वर्तमान लेखन की दशा–दिशा।

दूसरे सत्र में सोशल और इलेक्ट्रानिक्स मीडिया का समाज पर प्रभाव व आर्य समाज और तीसरे सत्र में हिंदी लेखन में व्याकरण एवं वर्तनी के महत्व तथा अंतिम सत्र समापन एवं सम्मान समारोह के लिए समर्पित था।

सत्रों के समाचार

मानवता को बचाने के लिए वेद मार्ग ही एक मात्र रास्ता। – आचार्य वेदप्रिय शास्त्री

वेद मार्ग से भटककर समाज वेदनाग्रस्त हो रहा है। – कन्हैया लाल आर्य

पत्रकारिता को मिशन बनाना समय की है जरूरत। – डा. बद्री प्रसाद पंचोलीवेदों का विज्ञान हिंसा मुक्त, स्वार्थ मुक्त और भ्रष्टाचार मुक्त वातावरण तैयार करने का मंत्र देता है – पं शिव नारायण उपाध्याय

आर्य लेखक परिषद् के तत्वावधान एवं परोपकारिणी सभा अजमेर के विशेष सहयोग से ऋषि उद्यान परिसर अजमेर में 7–8 सितम्बर 2019 को साहित्यकार सम्मेलन का आयोजन किया गया। आठ सत्रों में आयोजित इस सम्मेलन में अनेक विषयों पर खुलकर परिचर्चाएं हुईं। जिसका आधार विषय–वर्तमान परिदृश्य में वैदिक वांगमय की प्रासंगिकता एवं उपयोगिता रखा गया था।

साहित्यकार सम्मेलन का उद्घाटन 7 सितम्बर को प्रातः 10 बजे दीप प्रज्वलित करके किया गया। इस अवसर पर माता ज्योत्स्ना जी, ऋषि उद्यान अजमेर, प्रसिद्ध साहित्यकार डा. राकेश चक्र मुरादाबाद, कन्हैयालाल आर्य, मंत्री परोपकारिणी सभा, आचार्य वेदप्रिय शास्त्री, प्रधान आर्य लेखक परिषद्, वैदिक आचार्य विमल कुमार हरदोई, उ.प्र., वेद विद्वान डा. वेद प्रकाश विद्यार्थी, अजमेर, डा. अनंग पाल सिंह, भगवत भट्ट व किंकर पाल सिंह प्रभु दयाल खरे, ग्वालियर, प्रेम नारायण साहू, कोमल प्रसाद कोरी, मुरारी शिल्पी, रायसेन म.प्र., डा. हरीसिंह पाल, आचार्य ओम प्रकाश दिल्ली, आचार्य राम स्वरूप रक्षक अजमेर, स्वामी विज्ञान मुनि, कृष्ण गोपाल आर्य कोटा, प. शिवनारायण उपाध्याय, वेद भूषण आर्य व प्रांशु आर्य

कोटा और सम्मेलन के संयोजक शब्दशिल्पी व चिंतक अखिलेश आर्येन्दु के अतिरिक्त इस अवसर पर बड़ी संख्या में साहित्यकार उपस्थित थे।

प्रातःकाल वातावरण वर्षा की रिमझिम फुहारों और बादलों की गर्जना के मध्य प्रथम दिवस उद्घाटन सत्र के नाम था।

उद्घाटन सत्र में मुख्य अतिथि के रूप अपना विचार रखते हुए श्रीमती परोपकारिणी सभा के मंत्री श्री कन्हैया लाल आर्य ने कहा–जहां वेद नहीं वहां वेदना है। वेदना में रहना है तो वेद छोड़ दीजिए। और यदि वेदना से छुटकारा पाना है तो वेद के रास्ते पर चलना ही पड़ेगा। वेद के रास्ते पर ही चलकर इंसान का भला हो सकता है। मानवीय संस्कार वैदिक मूल्यों से ही फूलते–फलते हैं। इस लिए वेद मार्ग पर हम चलकर अपना और समाज की भलाई कर सकते हैं।

वैदिक विद्वान एवं लेखक आचार्य विमल कुमार हरदोई, उ.प्र. ने अपने उद्बोधन में कहा, वेद उसी परमात्मा के गीत हैं जिस परमात्मा ने हमें बनाया है। इंसानियत को बचाने के लिए समाज सुधार परक लेखन की बहुत जरूरत है। इसके अभाव में आतंकवाद, भ्रटाचार, अनाचार व हिंसा जैसी अनेक समस्याएं बढ़ रही हैं। आज जब की समाज को विघटित करने वाली तमाम तरह की समस्याएं बढ़ती जा रहीं हैं, ऐसे में वैदिक वांगमय में मौजूद ज्ञान की उपयोगिता और प्रासंगिकता कहीं ज्यादा बढ़ जाती है। आचार्य ने कहा, महर्षि दयानंद के बाद साहित्य, दर्शन के क्षेत्र में पं गंगा प्रसाद उपाध्याय जैसा कोई विलक्षण व्यक्तित्व पैदा नहीं हुआ। आचार्य राम चंद्र शुक्ल इस बात पर जोर देकर कहते थे। उन्होंने आगे कहा, एक बार गुरु विरजानंद ने महर्षि दयानंद से कहा– आज संसार में अंधकार बढ़ रहा है। अपने पुरुषार्थ से वेद ज्ञान के द्वारा उसे समूल नाश करो। जिससे समाज का कल्याण होगा। वैदिक वांगमय की आवश्यकता पर जोर देते हुए आचार्य विमल कुमार ने कहा, बिना वेद के हम कोई भी शाश्वत सिद्धांत और नैतिक मूल्य मनुष्य में विकसित नहीं कर सकते।

वक्ता के रूप में बोलते हुए वैदिक चिंतक डा. वेद प्रकाश विद्यार्थी ने कहा, वैदिक वांगमय ही ज्ञान के आधार भूत स्रोत हैं। वैदिक वांगमय वेद को प्रमाण मानते हैं, यह बहुत कम लोग जानते हैं वेदों से ही विज्ञान का उद्भव हुआ। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के लिए जो कुछ किया जाता है, वह वेद का विधान है। वेद हमारे शाश्वत ग्रंथ हैं और सब के लिए हैं। वेद की भाषा किसी प्रचलित समाज की भाषा नहीं है। इस लिए वेद मंत्रों को समझने के लिए निरुक्त, छंद, ज्योतिष व शिक्षा आदि की जरुरत पड़ती है। वेद ज्ञान के अभाव में आज दुनिया में अशांति फैली हुई है। यदि पूरे विश्व में वेदों के विचार फैला दिए जाएं और इंसान उन विचारों पर चलने के लिए संकल्पित हो जाए तो सारा संसार स्वर्गधाम बन सकता है।

प्रसिद्ध साहित्यकार डा.राकेश चक्र मुरादाबाद, उ.प्र. ने अपने उद्बोधन में कहा, वैज्ञानिक शोधों से भी यह साबित हो गया है कि गायत्री मंत्र कई नजरिए से बहुत ही उपयोगी और फायदेमंद है। गायत्री को सतकी मूर्ति की पूजा से नहीं बल्कि उसे अपनी जिंदगी में उतारने ते उसका फल मिलता है। महर्षि दयानंद ने आर्य समाज के द्वारा ऐसे अनेक कार्य किए जो सारी मानवता के लिए वरदान साबित हुए। आज जरुरत इस बात की है कि महर्षि दयानंद के कार्यों को आगे बढ़ाया जाए।

वैदिक लेखक और विद्वान प. शिवनारायण उपाध्याय ने कहा,– आजादी के समय बहुत कम लोग शिक्षित थे। गरीबी बहुत थी। महर्षि दयानंद ने गरीबी हटाने और अशिक्षा से छुटाकारा पाने के लिए जहां गुरुकुलों की स्थापना की वहीं पर उद्योग धंधों और
कृषि को बढ़ाने की बात कही।

आंदोलनकर्मी, लेखक और संपादक श्री संतसमीर दिल्ली ने अपने प्रेरक उद्बोधन में कहा– जब हिंदी अपनी शैशव अवस्था में थी उस समय महर्षि दयानंद ने और बाद में आर्य समाज ने हिंदी के प्रचार–प्रसार के लिए अपनी सारी शक्ति लगा दी। भारतेंदु बाबू हरिश्चंद से लेकर वर्तमान साहित्यकारों के लेखन में आर्य समाज और महर्षि दयानंद के सुधारवादी कार्यों की झलक मिलती है। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार ने जो आर्य समाज की विश्व प्रसिद्ध शिक्षण संस्था है ने पत्रकारों और लेखकों की फैज खड़ी कर दी। पंजाब केसरी, आर्य मित्र, वीर अर्जुन, मिलाप और

दूसरे तमाम पत्र आर्य समाज की प्रेरणा से प्रारम्भ किए गए थे। यदि आर्य समाज अपने नए तेवर के साथ कार्य करना प्रारम्भ करे तो कोई कारण नहीं कि समाज में सार्थक बदलाव दिखाई न पड़े।

लेखक और चिंतक आचार्य ओम प्रकाशजी दिल्ली ने दूसरे सत्र में अपने उद्‌बोधन में कहा,–देवनागरी लिपि के संरक्षण में आर्य समाज ने जो कार्य किए वह आज की पीढ़ी नहीं जानती। लेकिन सच तो यह है कि महर्षि दयानंद और आर्य समाज ने लिपि और भाषा का संरक्षण न किया होता तो शायद आज भारत में केवल यूरोपियन लिपि ही लिखने का माध्यम होती। इसी सत्र में आर्य लेखक परिषद् के उपाध्यक्ष आचार्य राम स्वरूप, अजमेर ने कहा– देव नागरी लिपि की वैज्ञानिकता को आज की पीढ़ी नहीं जानती। इसे बताने की जरूरत है। यदि हमने वक्त रहते इस पर गौर नहीं किया तो हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि दोनों से हम नहरूम हो जाएंगे।

उद्‌घाटन के अवसर पर बोलते हुए आर्य लेखक परिषद् के प्रधान, वैदिक विद्वान व लेखक आचार्य वेदप्रिय शास्त्री जी ने वर्तमान परिदृश्य में वैदिक वांगमय का परिचय एवं उपयोगिता सत्र में बोलते हुए कहा– आज जरूरत इस बात की है, समाज सुधार की दिशा में सार्थक कार्य किए जाएं जिससे समाज में बदलाव आए और समाज से अंधविश्वास, पाखंड़ कुरीतियों का खात्मा हो। समाज में हिंसा, अनैतिकता, व्यभिचार, क्रूरता और शोषण की समाप्ति हो, यह वैदिक ज्ञान और विज्ञान के द्वारा ही हो सकता है। वेदों में बताए गए सूत्रों को अपनाए बिना विश्व समाज का सर्वहित संभव ही नही है।

प्रसिद्ध साहित्यकार डा. बद्री प्रसाद पंचोली ने कहा– एक समय ऐसा था जब पत्रकारिता मिशन हुआ करती थी। आजादी के पहले पत्रकारों और लेखकों में देश के प्रति कुछ विशेष तरह का जुनून हुआ करता था। उस जुनून की वजह से ही अनेक दैनिक अखबार निकाले गए। और उसमें समाज सुधार परक रचनाएं प्रकाशित हुईं। जिससे लोगों में देश के प्रति विशेष तरह की प्रेरणा जागृत हुई।

स्वामी विज्ञान मुनि, बीड महाराष्ट्र ने अपने उद्‌बोधन में कहा– देश की सेहत सुधारने की आवश्यकता है। इसके लिए भारतीय प्रणाली और विधि आयुर्वेद को अपनाना जरूरी है। आयुर्वेद के जरिए हम विदेशी चिकित्सा पद्धति के बढ़ते प्रभाव को रोक सकते हैं।

प्रसिद्ध वैदिक विद्वान, लेखक और आचार्य डा. रूपचंद्र दीपक जी ने अपने विशेष उद्‌बोधन में कहा– वैदिक वांगमय की सार्वकालिकता और प्रासंगिकता पर कोई सवाल नहीं खड़ा किया जा सकता है। मौजूदा लेखन जिस दिशा में बढ़ रहा है, उस पर गौर करने की आवश्यता है। क्योंकि इसका सकारात्मक असर समाज पर दिखाई नहीं पड़ रहा है। हमें समाज में व्याप्त रूढ़ियों अंधविश्वासों और संकुचित धारणाओं के दायरे से निकलने की जरूरत है। यदि हम ऐसा कर सकें तो जहां व्यक्ति में मानवीय मूल्यों का प्रभाव बढ़ेगा वहीं पर समाज बेहतरी की तरफ आगे बढ़ेगा।

प्रसिद्ध गीतकार अनंगपाल सिंह भदौरिया, ग्वालियर ने अपने उद्‌बोधन में कहा– आर्य लेखक परिषद् के जरिए देशभर में चलाए जा रहे लेखन और पत्रकारिता शिविरों और गोष्ठियों के जरिए लेखकों और पत्रकारों को लेखन की बारीकियों को सिखाने का जो कार्य किया जा रहा है वह पत्रकारिता के लिए अच्छा संकेत है।

हिंदी के प्रसिद्ध साहित्यकार डा. प्रमोद अग्रवाल ने अपने सम्बोधन में कहा,–महर्षि दयानंद और आर्य समाज जीवन जीने का मर्म सिखाते हैं। हमें समाज सुधार के लिए आगे आने की जरूरत है।

साहित्यकार और नागरी लिपि परिषद् के महामंत्री डा. हरीसिंह पालजी ने अपने उद्‌बोधन में आर्य लेखक परिषद् के कार्य और उद्देश्यों का विस्तार से जिक्र किया। उन्होंने कहा– हिंदी को जब तक राष्ट्र भाषा की मान्यता नहीं मिलेगी जब तक राष्ट्रीय एकता पर संकट मडराते रहेंगे।

अजमेर निवासी प्रसिद्ध पत्रकार श्री राजेन्द्र गुंजाल ने कहा–फेक न्यूज का दबदबा दिनोंदिन बढ़ रहा है। इससे स्वस्थ पत्रकारिता प्रभावित हो रही है। इससे पार पाने की जरूरत है। उन्होंने आर्य समाज की सराहना करते हुए कहा – आर्य समाज ने एक से बढ़कर एक लेखक और पत्रकार दिए। आर्य लेखक परिषद् यदि इस कार्य को आगे बढ़ाए तो लेखन के

क्षेत्र में कुछ मौलिक और नया देखने को मिल सकता है।

दूरदर्शन से जुड़े कवि डा. प्रेंम परिहार, दिल्ली ने अपने संबोधन में कहा–मीडिया को गरीब, असहाय और दलित की आवाज बननी चाहिए थी जो नहीं कर पा रहा है। आज जरूरत इस बात की है मीडिया समाज के प्रत्येक व्यक्ति की आवाज बने।

सम्मेलन में 7 सितम्बर को सायं 8 बजे कवि गोष्ठी का आयोजन किया गया। कवि गोष्ठी की शुरूआत रायसेन, म.प्र. से आए कवि प्रेंम नारायण साहू के संचालन में हुई। जिसमें जोधपुर से पधारे श्री अशफाक अहमद, छिंदवाड़ा म.प्र. से पधारे श्री कोमल प्रसाद कोरी, रायसेन के प्रसिद्ध कवि श्री प्रभु दयाल खरे, हेमंत कुमार अजमेर, डा. हरीसिंह पाल दिल्ली, आचार्य रूपचंद्र दीपक लखनऊ, श्री भागवत् भट्ट जी ग्वालियर, श्री डा.प्रेम परिहार दिल्ली, श्रीमती रंजना परिहार दिल्ली, मुरारी शिल्पी रायसेन, म.प्र. आचार्य वेदप्रिय शास्त्री जी बांरा, राज., डा. बद्री प्रसाद पंचोली अजमेर, ब्रह्मचारी पाठक अजमेर, अखिलेश आर्येन्दु दिल्ली, श्री किंकर पाल सिंह जी ग्वालियर, डा. पुष्पा सिंह विसेन दिल्ली, श्री अनंगपाल सिंहजी ग्वालियर, श्री संत समीर दिल्ली और राम चन्द्र प्रजापति अजमेर सहित अनेक कवियों से भाग लिया। कवि सम्मेलन की अध्यक्षता डा. अनंग पाल सिंहजी ने की।

सम्मेलन के अंतिम सत्र में प्रसिद्ध कवि डा. अनंग पाल सिंह जी के उपन्यास दृअक्षय आश्रय, का साहित्यकारों ने विमोचन किया। 38 साहित्यकारों व आर्य मनीषियों को आर्य लेखक परिषद् की ओर से प्रतीक चिन्ह, खादी कपड़े का झोला एवं प्रज्ञा सम्मान पत्र देकर सम्मानित किया गया।

दो दिवसीय इस साहित्यकार सम्मेलन को आधार प्रदान करने का श्रेय श्रीमती परोपकारिणी अजमेर को जाता है जहां भोजन, आवास, ध्वनि विस्तारक यंत्र, आत्मीयता और अन्य तरह की सभी सुविधाएं मिलीं वहीं पर आर्य लेखक परिषद् के पदाधिकारियों, सदस्यों और शुभेच्छुओं का भी पूरा सहयोग प्राप्त हुआ। पत्रकार श्रीमान् राजेन्द्र गुंजालजी का विशेष मीडिया सहयोग प्राप्त हुआ, जिसके लिए मैं आर्य लेखक परिषद् की ओर से हृदय से धन्यवाद करते हुए आभार व्यक्त करता हूं।

आर्य लेखक परिषद् के जिन मित्रों का विशेष सहयोग मिला उसमें आर्ष क्रांति पत्रिका के सह सम्पादक प्रांशु आर्य जी, आर्य परिवार संस्था के व आर्य लेखक परिषद् के सहयोगी श्री वेदभूषण जी, श्री कृष्ण गोपाल आर्य जी, कोटा और डा. हरी सिंह पालजी जो आर्य लेखक परिषद् के उपमंत्री हैं का धन्यवाद व्यक्त करता हूं, जिनके सहयोग से यह कार्यक्रम सफलता के साथ सम्पन्न हो गया।

परोपकारिणी सभा के यशस्वी प्रधान डा. वेदपालजी ने मेरे निवेदन को स्वीकार करते हुए सभा भवन व परिसर उपलब्ध कराया, इसके लिए डाक्टर साहब को आर्य लेखक परिषद् धन्यवाद और आभार व्यक्त करती है। की सदस्या माता ज्योत्स्ना जी का विशेष सहयोग और आशीर्वाद दोनों दिन इस तरह रहा कि किसी तरह की कोई कमी या अभाव की अनुभूति नहीं हुई। इसके लिए माता जी का आर्य लेखक परिषद् उन्हें धन्यवाद देते हुए कोटि–कोटि आभार व्यक्त करती है। इसी तरह परोपकारिणी सभा के यशस्वी मंत्री श्रीमान् कन्हैया लाल आर्य जी का सम्मेलन को सफल बनाने में विशेष सहयोग और मार्ग दर्शन प्राप्त हुआ। मंत्री जी के कृतज्ञता व्यक्त करते हुए आर्य लेखक परिषद् उनका कोटिशः धन्यवाद करती है। इसी क्रम में परोपकारिणी सभा व गुरुकुल जुड़े आचार्य प्रभाकर देवजी, श्री हिम्मत सिंह जी, श्री लेख रामजी और अन्य तभी लोगों का परिषद् की ओर से धन्यवाद करता हुआ हृदय से आभार व्यक्त करता हूं।

अंत में साहित्यकार सम्मेलन में पधारे सभी साहित्यकारों का सम्मेलन को सफल बनाने में जो सहयोग मिला उसके लिए सब को हृदय से धन्यवाद देता हुआ कोटि–कटि आभार व्यक्त करता हूं।

इस तरह अनेक स्मृतियों को समेटे यह सम्मेलन नई आशा और उमंग की उम्मीद लिए एक नए कार्यक्रम के संयोजन के साथ सम्पन्न हो गया। सम्मेलन के संयोजक परिषद् के मंत्री अखिलेश आर्येन्दु। मार्गदर्शन माता ज्योत्स्ना जी का और विशेष सहयोग डा. वेद प्रकाश विद्यार्थी और श्री राजेन्द्र गुंजालजी व आचार्य प्रभाकर आर्य का रहा।